UNIVERSAL
LIBRARY

OU_180208

UNIVERSAL
LIBRARY

H83:1/S13B G.H.2468
साहनी, भीष्म।
भाग्य-रेखा।

OSMANIA UNIVERSITY LIBRARY

Call No. H 83.1 / S 13 B Accession No. G. H. 2468

Author साहनी, भीष्म ।

Title भाग्य - रेखा ।

This book should be returned on or before the date last marked below.

भाग्य रेखा

भाग्य-रेखा

लेखक
भीष्म साहनी

राजहंस प्रकाशन,
दिल्ली ६

प्रकाशक—
राजहंस प्रकाशन,
सदर बाज़ार, दिल्ली ६.

मूल्य —एक रुपया बारह आने
प्रथम संस्करण

मुद्रक—
राजहंस प्रेस,
दिल्ली।

शीला के नाम—

क्या कहाँ—

संख्या		पृष्ठ
१. जोत	...	६
२. अशान्त रूहें	...	२७
३. शिष्टाचार	...	३५
४. अनोखी हड्डी	...	४२
५. तमगे	...	४६
६. क्रिकेट मैच	...	६१
७. मुर्गी की कीमत	...	६८
८. नीले आंखें	...	७६
९. ऊब	...	८५
१०. गंगो का जाया	...	९५
११. भाग्य-रेखा	...	१०५
१२. घर-बेघर	...	११२
१३. खून के छींटे	...	१२३
१४. घर की इज्जत	...	१३३

—:००:—

जोत

जानकू ने चिलम को ठकोरते हुए एक बार फिर आसमान की तरफ देखा। बारिश हल्की तो हो गई थी, लेकिन बादल उसी तरह घने और बोझल, सारे आसमान को ढके हुए थे। रात सलामती से गुजर जाए, ओले न पड़ें, तो वह और इन्तजार नहीं करेगा, कटाई शुरू कर देगा।

जानकू ने अपने इष्ट देवता का नाम लिया और गले में बंधे हुए देवता के चिन्ह चाँदी की 'सिंघी' को छुआ : 'मालिक, नजर रखीं।' फिर पास पड़े हुए, मलमल के छोटे से काले कपड़े को तह करने लगा।

जानकू का खेत पहाड़ की ढलाई पर था। खेत तो कहना ठीक नहीं, खेत के छोटे-छोटे टुकड़े थे, जो सीढ़ियों की शकल में, एक के ऊपर दूसरा, तलाई को ढके हुए थे। कांगड़े के सुदूर पहाड़ों में जंगलात का जो रास्ता 'कोहड़' से 'नल्शेता' की ओर, ऊँचे पहाड़ को कमरबन्द की तरह घेरे हुए है, उसी के दामन में, यह जमीन का टुकड़ा था। एक कोने में छिपा हुआ होने के कारण जानकू की जमीन बाकी गाँव से अलग-थलग थी।

गाँव में खेत कट चुके थे और लोग मटोर मेले की तैयारियों में थे। कांगड़े के हर गाँव वाले के लिए मटोर-मेला एक लम्बे सफर के बाद अपने चिर-वांछित स्थान पर पहुँच जाने के बराबर था। खेत कट जाते और 'हाड़' महीने के पहले दिन, गाँव के लोग, नरसिंघों और नगारों को बजाते हुए, गाँव के देवता की पालकी उठाए हुए, कई पहाड़ियाँ पार करके मटोर गाँव की ओर जाते, जहाँ अनाज के बड़े देवता का

मन्दिर था। दिन भर देवता की पूजा होती, और मन्दिर के फर्श पर चढ़ावे के गेहूँ का एक बिछौना-सा बिछ जाता। फिर रंगरलियाँ होती, लुगड़ी के नशे में किसान झूमते हुए घरों को लौटते और अपने इष्ट देवता को फिर से मन्दिर में स्थापित कर देते।

पर जानकू इस मेले पर हमेशा हाँपता हुआ ही पहुँचता था। उसकी जमीन, छिपे हुए कोने में होने के कारण, सूरज की धूप से वञ्चित रहती थी। जहाँ औरों के खेत पहाड़ के विशाल वक्ष पर फैले हुए, दिन भर खिली हुई धूप का रस लेते, वहाँ जानकू के खेत पर केवल दोपहर की ढलती हुई धूप पड़ती—और इसी कारण बरसात के शुरू हो जाने तक खेत तैयार न हो पाता। इसीलिये जेठ महीने के आखिरी दिन हमेशा जानकू को नींद उचाट किये रहते। जहाँ और लोग मेले की तैयारियों में व्यस्त होते, वहाँ जानकू की आँखें आसमान को ताकती रहतीं कि ओले न पड़ें और खेत बच जाए!

यह थी जानकू की जमीन। अन्यमनस्क, मलमल के कपड़े को सहलाते हुए, उसकी आँखों के सामने कई दृश्य घूम रहे थे, वह दृश्य भी जब उसने इस जमीन को खरीदने का निश्चय किया था। उसे ऐसा जान पड़ा जैसे फिर उत्तमी का छोटा-सा सलौना हाथ उसके दिल को छूने लगा है, और उसके कन्धे पर अपना सिर रखे उत्तमी कह रही है—'ले लो न यह जमीन। मैं जो अब आ गई हूं। मैं सब काम करूँगी।'

और जानकू ने उसका हाथ सहलाते हुए कहा—'यह जमीन के बहुत छोटे-छोटे टुकड़े हैं उत्तमी, काम करते-करते हड्डियाँ टूट जायँगी।'

'मैं तीन घड़े पानी के उठाकर पहाड़ी पर चढ़ सकती हूँ। मैं सब काम कर लूँगी!'

और फिर धीरे से जानकू के सीने के साथ सटकर हँसती हुई, और अपनी चमकती हुई आँखों से उसे अवाक करती हुई बोली—'यहाँ हमें कोई देखेगा भी नहीं। जब चाहेंगे काम करेंगे, जब चाहेंगे बैठ कर बातें करेंगे। यहाँ तो गाँव के आदमी आते ही नहीं। तू कोठा बेचकर जमीन खरीद ले!'

और जानकू ने अपना पैतृक कोठा बेचकर यह जमीन खरीद ली!

दो ही महीने पहले, सात पहाड़ियाँ दूर बैजनाथ से, जानकू उत्तमी को व्याह के लाया था। अढ़ाई सौ रुपये तो देने पड़े थे, लेकिन जैसे स्वर्ग खरीद के ले आया हो। उत्तमी गोड़ी करती तो हंसती हुई, और जो जंगल में से लड़कियाँ काट कर लाती तो हंसती हुई। और धीरे-धीरे इसी जमीन की स्निग्ध ओट में, उत्तमी दो बच्चों की माँ भी हो गई थी।

पर अब उत्तमी नहीं थी। उसे मरे भी आठ साल से अधिक बीत चुके थे। उत्तमी का श्वेत कोमल हाथ, सहसा निर्जीव हो कर, जैसे जानकू के कन्धे पर से लुढ़क गया!

जानकू ने आँख उठा कर देखा तो लम्बरदार सामने खड़ा था। कद का लम्बा और गठीला, सिर पर पगड़ी और कानों में सोने की बालियाँ। लम्बरदार की चाल-ढ़ाल में ही रोब था। जब बात करता तो अपने आप ही माथे पर बल पड़ जाते। जानकू एक हाथ से अपने गले में बँधी हुई 'सिंधी' को छूता हुआ उठ खड़ा हुआ।

'तेरी जमीन फिसल रही है जानकू और तू बैठा चिलम पी रहा है। जमीन रहे या जाय, लगान देना होगा, पहले ही कह दूँ।'

और बिना कुछ कहे सुने, बिना जवाब-सवाल का मौका दिये, वह रास्ते पर आगे निकल गया।

जानकू की टाँगें लड़खड़ा गईं और वह हतबुद्धि घर की सीढ़ी पर बैठ गया। उसे ओलों का डर था, कि कहीं लहलहाते खेत को बर-

बाद न कर दें, जमीन के फिसलने का नहीं। लेकिन अक्सर वही दीवार टूटने लगती है जिसे मनुष्य सब से अधिक मजबूत समझता है।

लम्बरदार की आवाज सुन कर जानकू के दोनों बच्चे घर से बाहिर निकल आए और हैरान आँखों से अपने बाप को देखने लगे। उनकी समझ में न आया कि क्यों उनका बाप एक वाक्य सुनने पर ही जमीन पर यूँ बैठ गया है। छोटे सोमी को तो फिसलती जमीन देखने की तीव्र उत्कण्ठा हुई, लेकिन पिंता को चुपचाप बैठा देख कर मुँह में उँगली दबाए खड़ा रहा।

सीढ़ी पर से उतर कर जानकू मुंडेर के पास आया जहाँ पत्थरों से ही ढकी हुई, देवता की छोटी-सी मूर्ति धरी थी, और हाथ बाँध कर देवता के सामने खड़ा हो गया—'मालका नजर रखीं, नजर रखीं महाराज!'

और फिर बार-बार देवता के चरणों पर अपना माथा रखने लगा।

जब से उत्तमी मरी थी, उसे देवता से डर लगने लगा था। उत्तमी की मौत पर पहली बार उसे देवता के क्रोध का आभास हुआ था, कि वह कितना दुर्दम और घातक हो सकता है। और जानकू मानने लगा था कि सब बात देवता के हाथ में है, जो उत्तमी मरे तो क्या और जो ओले पड़ें तो क्या। बल्कि जानकू तो मानता था कि उसने सचमुच देवता के चढ़े हुऐ तेवर देखे हैं, देवता के मुंह पर क्रोध की रेखा देखी है।

जानकू ने तब से अपने घर के बाहिर, दीवार पर, देवता की हाथ भर ऊँची मूर्ति रख छोड़ी थी, जिसके पास देवता की खड़ाँव, एक टीन का छोटा-सा त्रिशूल, और मूर्ति के ऊपर, एक लकड़ी पर टँगी हुई देवता की पताका। आते जाते जानकू देवता के चरण छू लेता, और उठते-बैठते अपने गलेमें बंधी हुई देवता की 'सिंघी'।

कांगड़े में हर पहाड़ के दामन में एक गाँव है, और हर गाँव का अलग-अलग देवता। उसकी मूर्ति न केवल पहाड़ की 'जोत' पर (चोटी पर) ही आसीन रहता है, जहाँ से वह गाँव के हर आदमी को देखती रहती है, बल्कि गाँव के मन्दिर में, और गाँव के हर घर के बाहिर भी, उसका स्थान है। जानकू हर त्योहार जोत पर चला जाता और देवता को नमस्कार करता, और हर रोज मन्दिर में और घर पर देवता की पूजा करता। उसकी चेतना में उत्तमी का स्थान देवता ने ले लिया था।

आज फिर जानकू को देवता के माथे पर बल नजर आए और उसका दिल काँप उठा। बार-बार याचना करने के बाद वह अपनी जमीन की तरफ भागा।

शाम हो चुकी थी जब वह जमीन पर पहुँचा। फटे हुए कम्बल का घुटनों तक कोट, बकरी के बालों का कमरबन्द, नंगे पाँव, और सिर पर एक कीच की-सी मैली टोपी, विशाल काय पहाड़ों के दामन में अकेला खड़ा हुआ जानकू, बार-बार अपनी जमीन को देख रहा था।

बरसात के दिनों में पहाड़ों पर से अक्सर चट्टानें गिरा करती हैं, हवा की तेजी में रीह और पोश के पेड़ टूट-टूट जाया करते हैं, और सड़कों और खेतों के हिस्से बारिश के थपेड़ों से बह-बह जाते हैं। जमान का फिसलना कोई नयी बात न थी।

लेकिन, जानकू को देख कर सन्तोष हुआ कि जमीन अभी तक खड़ी थी, फिसली नहीं थी, केवल जमीन की सबसे निचली सीढ़ी टेढ़ी हो कर नाले की ओर झुक गई थी। पर पहाड़ की तलाई के निचले हिस्से में एक गहरा चीर आ गया था, और यह चीर चन्द्राकार में फैलता हुआ जानकू के सारे खेत को घेरे हुए था। बारिश का पानी इसी दरार में से बह-बह कर नीचे आ रहा था और इसे और भी गहरा और चौड़ा किये जा रहा था। डर इसी दरार से था। अगर यह गहरी

हो गयी तो सारी की सारी जमीन टूट कर बह जाएगी। ऐसे चीर जानकू ने पहले कई बार देखे थे, लेकिन इस तरह एक खेत का गला घोंटते हुए नहीं।

जानकू उलटे पाँव भागता हुआ गाँव की ओर दौड़ा। अगर खेत में चोर पड़ गया है तो वह बन्द भी किया जा सकता है। अगर पटवारी ने दया की और लम्बरदार ने गाँव के आदमी साथ कर दिये तो यह चीर बन्द हो जाएगा। और नहीं तो ऊपर से बारिश के पानी का रुख बदल दिया जा सकता है...

पटवारीखाना गाँव के दूसरे सिरे पर था। जब जानकू वहाँ पहुँचा तो गाँव के सब चौधरी, सायंकाल के अन्धेरे में बैठे लम्बरदार का इन्तजार कर रहे थे। देवता की झाँकी तैय्यार हो रही थी। जानकू हाथ बाँध कर बोला—मेरी जमीन बह चली है मालिको, कुछ करोगे तो बच जाएगी!'

और जब पटवारी ने आँख उठाकर जानकू की ओर देखा तो जानकू ने एक साँस में सारी वार्ता कह डाली।

थोड़ी देर के लिये सब चुप रहे। फिर राधे दुकानदार बोला—'कल देवता का दिन है जानकू, और अभी-अभी मन्दिर में पूजा होने वाली है। आज तेरे साथ कौन जाएगा?'

'जो तुम लोग दया करोगे तो बच जाएगी।' जानकू ने याचना की।

फिर पटवारी ने सिर हिलाते हुए, अपनी छोटी-छोटी तीव्र आँखों से जानकू को देखते हुए, धीरे-धीरे कहना शुरू किया। पटवारी पूजा-पाठ करने वाला आदमी था, हर बात भाग्य पर विश्वास करके कहता था—'फिसलती जमीन को कौन रोक सकता है जानकू, और फिर जेठ की बारिश। तुझ पर देवता का कोप है। तेरी मदद कोई क्या करेगा? पिछले साल तेरा भैंसा हल चलाते हुए मर गया। कभी भैंसे भी यूँ

मरे हैं ? फिर सबके खेत कट जाते हैं, तो तेरे खेत का सिट्टा हमेशा हरा रहता है ; कभी ऐसा भी हुआ है ?"

राधे दुकानदार ने भी, पटवारी की हाँ में हाँ मिलाते हुए, हामी भर दी—'पहले देवता का कोप दूर कर दे, फिर खेत में बरकत आएगी। मेरी मान और बकरे का चढ़ावा चढ़ा दे। कल देवता का दिन है।'

'बकरे के लिये पैसे कहाँ से लाऊं ?' जानकू ने रुंधे हुए गले से पूछा।

किसी ने कोई जवाब न दिया। अंधेरा बढ़ रहा था और उसकी बढ़ती छाया में चौधरियों के आकार धुंधले और अस्पष्ट हो रहे थे। बारिश की टप-टप उसी तरह जारी थी, और रिस-रिस कर जैसे जानकू की आत्मा तक को निरुद्ध कर रही थी। देवता के कोप का सुनकर उसका दिल बैठ गया। उसे इसी बात का डर था कि कहीं फिर देवता का कोप न हो। जीवन भर में जानकू ने ऐसी भयानक रात न देखी थी।

पटवारी फिर अपने स्थिर, हृदयहीन लहजे में बोला—'जोत पर जाके कोई मन्नत मान। ऊपर चला जा। बकरे के चढ़ावे की भी कोई जरूरत नहीं।'

कोने में बैठे हुए हरिचन्द ने पटवारी की बात काट कर कहा—'सिरफ मन्नत मान लेने से या देवता की पूजा से काम नहीं चलेगा जानकू, खेत फिसल रहा है, अभी कुछ कर पाएगा तो बचेगा नहीं तो कल तक उसका निशान भी नहीं मिलेगा। यह सब पुरानी बातें हैं। तेरी जमीन जंगलात की सड़क के पास है न, यह काम जंगलात वाले कर सकते हैं। तू रेंजर के पास चला जा। वह हाकिम है, मान जाए तो रातोरात मजूर लगा के जमीन के नीचे दीवार खड़ी कर देगा। और कोई तरीका नहीं। जा, देर मत कर।'

हरिचन्द की और पटवारी की पटती नहीं थी, खासकर जब हरिचन्द हाल ही में एक ठेकेदार का कारिन्दा बनकर अमृतसर तक उसके खच्चर हाँक आया था, और बात-बात पर जिरह करता था।

लेकिन जानकू को कुछ सहारा मिला। देवता की तृप्ति जरूरी थी, मगर साथ ही अगर रेञ्जर मान जाए तो सम्भव है जमीन भी बच जाए। चुपचाप जानकू ने रेञ्जर के घर की राह ली। हरिचन्द उसे गली तक छोड़ने के लिये आया, और उसकी आस्था को पक्का करता हुआ कहने लगा—'ऊपर भगवान् है, तो नीचे हाकिम। पहले हाकिम की पैरवी कर। जो मामला न सुलझे तो देवता के पास जाना!'

पर रेञ्जर के घर की ओर पहाड़ी पर चढ़ते हुए जानकू की आस्था फिर टूटने लगी। जो सड़क रेञ्जर के घर की ओर चढ़ती थी, वही एक मोड़ पर अलग हो कर जोत को चली जाती थी। जानकू द्विविधा में पड़ गया। जोत पर एक बार माथा नवा आऊं तो फिर रेञ्जर के घर चला जाऊं। अगर देवता की तृप्ति पहले से करता, चढ़ावा चढ़ाता, पाठ करवाता, तो यह हालत न होती।

जानकू के कान में चाँदी की एक मुर्की थी। उसने सोचा कि अगर इसे मन्नत मान कर जोत पर चढ़ा आऊं तो बच जाऊंगा। पर फिर फिसलती जमीन का ख्याल आया तो कदम रेञ्जर के घर की ओर जाने के लिये आतुर हो उठे। जोत पर पहुँचते-पहुँचते रात आधी से ज्यादा बीत जाएगी, रेञ्जर सो जाएगा, और रात भर इन्तजार करनी पड़ेगी।

इसी द्विविधा में जानकू सड़क के दोराहे पर घबराया हुआ एक पत्थर पर बैठ गया। पटवारी के वाक्य फिर कान में गूञ्जने लगे। 'रेञ्जर क्या करेगा, जो देवता को मंजूर होगा, वही होगा।,

पटवारी ने कभी गलत नहीं कहा था। पटवारी के अपने घर बच्चा नहीं होता था, लेकिन जब ज्वाला जी के मन्दिर में उसने बकरे की बलि दी तो दूसरे ही साल चाँद का-सा बेटा उसके घर पैदा हुआ था।

भय, क्षोभ और उत्कण्ठा से जानकू का गला बार-बार रुंध गया। वह कभी इतना अकेला, निःस्सहाय और आश्रयहीन नहीं हुआ था। न मालूम कितनी देर तक दोराहे पर बैठा रहने के बाद वह, काँपते पाँव, और दोनों हाथों से 'सिधी' को पकड़े हुए, रेञ्जर के घर की ओर मुड़ पड़ा।

रेञ्जर शराब के नशे में था। शामदास रेञ्जर, जंगलात का सब से छोटा अफसर था. लेकिन तो भी हाकिम था, और हाकिम लोग रात के वक्त किसी से नहीं मिलते। बार-बार दरवाजा खट-खटाने के बाद वह लैम्प हाथ में लिये हुए बाहिर आया।

'रेञ्जर साहब, मेरे खेत में चीर आ गया है, जो ठीक न हुआ तो सारा खेत बह जायगा !' जानकू ने पहले वाक्य में ही अपनी दीनता का परिचय दे दिया, ताकि रेञ्जर नाराज न हो।

'कौन है ?' रेञ्जर ने लैम्प उठाते हुए ध्यान से देखा।

'जी हुजूर !'

'क्यों, क्या काम है ?'

और जानकू ने फिर हाथ बाँध कर सारा किस्सा कह सुनाया।

नशे के बावजूद भी, क्षण भर में, रेञ्जर ने मामला समझ लिया। अगर जमीन बह गई तो सड़क को भी नुकसान पहुँचेगा। लेकिन, बोला नहीं, चुपचाप खड़ा रहा।

'देखो महाराज, आज मुझ पर मुसीबत आई है, मेरी तरफ से आँख नहीं मोड़ो ! ऊपर भगवान् है और नीचे तुम हो ?'

जानकू ने गिड़गिड़ाते हुए हरिचन्द का कहा हुआ वाक्य दोहरा दिया और अधीर उत्कण्ठा से रेञ्जर के मुंह की ओर देखने लगा। लेकिन हाकिमों की निगाह भी देवता की निगाह की तरह गोपनीय होती है, कब उस पर बरकत करेगी, कौन कह सकता है।

जानकू को एकाएक सड़क का ख्याल आया, जो बल खाती हुई ऐन उसकी जमीन के ऊपर से जाती थी। रेज़र के पाँव घुटनों तक दबाते हुए बोला :

'देख मालिक, जो मेरी जमीन बह गई तो सड़क को भी नुकसान पहुँचेगा। वह कमजोर पड़ जायगी।'

रेज़र ने गुस्से से पाँव खींच लिये।

जानकू जानता था कि रेज़र पर एक ही चीज असर कर सकती है, और वह जानकू के फटे हुए जेबों में से कब की निकल चुकी थी। जानकू जब से गरीब हुआ था, यही सोचा करता था : देवता और हाकिम दोनों को एक ही चीज तृप्त कर सकती है, और वह उसके पास नहीं। वह देवता के क्रोध को कैसे शान्त कर पाएगा ?

किसी जमाने में रेज़र की उत्तमी पर नजर रहा करती थी। सारा गाँव जानता था। जानकू यह सुना करता और दिल ही दिल में रो दिया करता। पर गाँव की कौन-सी जवान लड़की थी जिस पर कभी-न-कभी रेज़र की नजर न रही हो ? जानकू का और कुछ न सूझा तो उत्तमी का वास्ता डालते हुए हाथ बाँध दिये—'उत्तमी के छोटे-छोटे बच्चे भूखों मर जायंगे, माई बाप !'

और उसने फिर रेज़र के पाँव पकड़ लिये।

रेज़र को शराब की मस्ती में उत्तमी का चेहरा याद आया, हर वक्त हंसता शर्माता हुआ चेहरा, उसका छोटा-सा गठीला बदन। उत्तमी के सांस की धीमी-सी बास भी रेज़र की उत्तेजित वासना को छू गई। लेकिन जानकू के सामने वह सरकारी अफसर था, और उत्तमी को मरे भी बरसों बीत चुके थे, और उत्तमी की जगह एक दिन के लिये भी खाली न हुई थी। पर रेज़र ने अब की बार जवाब जरूर दिया : 'मैं

जंगलात में काम करता हूँ जानकू, मेरा खेतों के साथ कोई वास्ता नहीं। जा गाँव वालों से मदद माँग !'

इस कोरे जवाब से जानकू का सिर चकरा गया। वह इस तरह रेञ्जर के मुंह की ओर ताकने लगा जैसे शून्य में देख रहा हो।

जानकू को फिर देवता की याद आई। उससे जरूर भूल हुई है। अगर हाँपता हुआ जोत के सामने जा खड़ा होता और देवता के चरणों पर माथा रख देता, तो जरूर देवता को दया आ जाती। देवता की नजर हो तो तूफान थम जाते हैं, और टूटते हुए पहाड़ ज्यों के त्यों खड़े रह जाते हैं। जानकू दिल ही दिल में देवता के सामने अपना दुखड़ा रो गया और अपनी असीम व्याकुलता को दबाए हुए, चुपचाप वहाँ से चल दिया, और बिना कुछ कहे सुने पहाड़ी उतरने लगा।

फिर एक ऐसी घटना घटी जिसका चमत्कार जानकू कई घण्टे तक नहीं समझ पाया। अभी वह चन्द कदम ही दूर गया होगा कि रेञ्जर की आवाज ने पाँव रोक लिये।

'ठहर जानकू, किधर भागा जाता है ? मैं तो तेरा दिल देख रहा था। आज तेरी जमीन टूट गई तो कल सड़क फिसलने लगेगी, इसमें नुकसान किस का है ?...तू जमीन पर चल। मैं मजदूर ले कर पहुँचता हूँ !'

जानकू जैसे काँप गया। उसकी आवाज देवता ने सुनी है, या हाकिम ने ?—नहीं, नहीं, जरूर देवता ने सुनी है। उसने जोत को याद किया तो रेञ्जर का मन बदल गया। रेञ्जर को देवता का हुक्म हुआ है ! जोत ने भक्त की आरती सुनी है !

जानकू को सोचने की आदत न थी। उसकी मोटी-मोटी उंगलियों वाले हाथ ही, काम में जुटे हुए, उसकी सारी सोच किया करते थे। लेकिन आज वह इस चमत्कार पर पुलकित हो उठा। उसे ऐसा लगा

जैसे कोई दिव्य हाथ उसके सारे बोझ को थामे हुए, उसे पग-पग पर आश्रय दे रहा है।

अथाह भावोद्रेक में जानकू ने रेञ्जर के पाँव पकड़ लिये, और फिर भागता हुआ पहाड़ी उतरने लगा। लेकिन जमीन की ओर जाने की बजाय वह अपने घर की ओर भागने लगा। बारिश उसी तरह जारी थी, और रात का सन्नाटा गहरा हो रहा था।

अपनी डेवढ़ी में पहुँच कर, रास्ता टटोलते हुए जानकू देवता की मूर्ति के सामने खड़ा हो गया, और काँपते हाथों से कान की मुर्की देवता के चरणों पर रख दी और बार-बार माथा निवाने लगा। फिर अन्दर पहुँच कर उसने कुप्पी जलाई।

जानकू के दोनों बच्चे, एक दूसरे से चिपटे हुए, गहरी नींद सो रहे थे। छोटी लड़की गोपी, बिल्कुल अपनी माँ की-सी सूरत लिये हुए, पीला चेहरा, पतले नक्श, घुटने छाती से लगाए, सिकुड़ कर पड़ी थी। उसके ओठों पर अब भी एक हल्की-सी मुस्कान खेल रही थी जो कागड़े की स्त्रियों का एकमात्र जेवर है और उनकी यातना को आजीवन छिपाए रखता है। उसके साथ लेटा हुआ सोमी बार-बार करवटें ले रहा था।

जानकू ने सोमी के कन्धे को हिलाया। सोमी दसवें वर्ष में था। अपने बाप का-सा नाटा शरीर, चौड़ा मुंह, छोटी-छोटी जन्म से ही निराश आँखें।

जब सोमी आँखें मलता हुआ उठ बैठा तो जानकू चुपचाप उसे पिछली कोठड़ा में ले गया, और उसे जमीन पर बिठा कर खुद उसके सामने बैठ गया। कुप्पी की अस्थिर रोशनी में सोमी केवल प्रकाश और अन्धकार के नाचते साए ही देख रहा था।

जानकू ने अपने आतुर हाँथों से, आँखें बन्द कर के, गले में बंधी हुई 'सिंघी' को उतारा और चुपचाप सोमी के गले में बाँध दिया। और

उसके सिर पर हाथ फेरने लगा। जानकू ने सोमी को भी देवता के अर्पण कर दिया।

जानकू के होंट कुछ कह रहे थे जिन्हें ऊंघता हुआ सोमी नहीं समझ पाया। फिर जानकू उठ खड़ा हुआ और बिना कुछ कहे सुने घर से बाहर चला गया। सोमी, हत्-बुद्धि, कितनी देर तक खिड़की में से बाहिर झाँकता रहा, और गली के कीचड़ को लाँघते हुए बाप के पाँव की आवाज को सुनता रहा।

जब जानकू जमीन पर पहुँचा तो रेज़र हाथ में बैटरी लिये, पाँच छः मजदूरों के साथ, खड़ा था। उसने एक ही नजर में समझ लिया था कि चीर की मरम्मत कोई बहुत बड़ी बात न थी। वह ऐसे सैंकड़ों चीर बाँध चुका था। पर जानकू की नजरों में अब भी वह एक भीषण खाई के समान था।

रेज़र ने पहले ही से मजदूरों को उनका काम बतला दिया था। जब जानकू पहुँचा तो उसने दोबारा, तलाई पर बैटरी की रोशनी डालते हुए समझा दिया कि नीचे, जहाँ जमीन की सीढ़ी फिसल रही है, वहाँ दो पत्थर चौड़ी दीवार बनेगी। जमीन पर जहाँ चीर था, जगह-जगह पत्थर और मिट्टी की रोकें खड़ी की जाएँगी। और ऊपर, सबसे ऊपर सड़क के पास, पानी का बहाव दूसरी तरफ बदल दिया जाएगा ताकि पानी जानकू की जमीन पर न पड़े।

जानकू ने सिर हिला हिलाकर सब समझ लिया। उसने देखा, रेज़र की आवाज में अब मिठास न थी, कटुता थी, तीखापन था— लेकिन वह हाकिम क्या जिसकी आवाज में मिठास हो। और फिर जानकू को इसकी परवाह न थी, रेज़र देवता के हुक्म पर काम कर रहा था।

जानकू को चीर में रोकें खड़ी करने के काम पर लगाया गया और दो मजदूर उसके साथ दिये गये। रेज़र खुद दो मजदूरों को साथ लेकर

ऊपर चला गया। और बाकी मजदूर, नीचे, नाले के पास, दीवार खड़ी करने चले गये।

जानकू थका हुआ था, मगर काम पर लपक पड़ा। पत्थर नीचे नाले के किनारे पर से लाने पड़ते थे। जानकू की बोझल, थकी हुई टाँगें नीचे जाते हुए बार-बार फिसल रही थीं। लेकिन पग-पग पर वह जैसे अपनी जमीन के दिल की धड़कन महसूस कर रहा था।

काम कितनी देर तक रहा, और कहाँ तक पूरा हो पाया, जानकू को कोई सुध न रही। लड़खड़ाते हुए पाँव नाले की ओर जाते, और बोझल, मुर्दा पीठ पर पत्थरों को उठाए हुए लौट आते। उसे मालूम न रहा कि बारिश की टप-टप कब बन्द हुई, और जंगल में से साँय-साँय करती हुई हवा ने कब पहाड़ों को अपने आलिंगन में ले लिया।

थकाहारा जानकू एक यन्त्र की तरह काम कर रहा था। उसके वहमी मन में केवल एक ही वाक्य बार बार चक्कर काटता—'आज देवता ने भक्त की सुनी है, हाकिम को देवता का हुक्म हुआ है! मेरी जमीन बच जायगी!'

पौ फूट रही थी जब जानकू ने कमर सीधी की। चीर में जगह-जगह रोकें बन गई थीं, लेकिन पानी रिस-रिस कर अब भी आ रहा था। जमीन तो बारिश में जैसे कीचड़ हो गई थी, और खेत भी बहुत कुछ उस कीच में मिल चुका था, लेकिन जानकू को इसकी चिन्ता नहीं थी। जमीन बच गई तो मनों अनाज फिर निकल आएगा। जमीन फिसली नहीं थी, उसकी निचली सीढ़ी भी नहीं गिरी थी, वरना उसे पता चल जाता। और अब तो उसे पत्थर की पक्की दीवार का सहारा मिल गया होगा। सीढ़ियाँ जरूर कच्ची हो गई थीं, लेकिन वह फिर भी ठीक हो सकती हैं। सिर्फ पानी का बहाव अभी पूरी तरह दूसरी तरफ नहीं मुड़ पाया था।

जानकू यह सब देख ही रहा था जब एक अजीब-सा शब्द, गम्भीर और भयानक, बादलों की गड़गड़ाहट का-सा, उसके कानों में पड़ा। और बिना उसे सोचने का अवसर दिये एक ऊँची चौड़ी चट्टान ऊपर से लुढ़कती, पेड़ों से टकराती पहाड़ की तलाई पर से गिरी।

जानकू घबराकर एक तरफ को हो गया। लेकिन जानकू के जमीन तक पहुँचने से पहले ही चट्टान रुक गई। जानकू ने इसका कारण जानने के लिये रेज़र को पुकारा। लेकिन कोई जवाब न मिला। फिर यह सोचकर कि शायद रेज़र ने सुना नहीं, स्वयं ऊपर जाने लगा। थके हुए लड़खड़ाते पाँव को घसीटता और कदम-कदम पर हाँफता जानकू पहाड़ी चढ़ने लगा। प्रभात की रोशनी में धीरे-धीरे हरएक चीज उसे नजर आने लगी थी।

सड़क के पास पहुँचा तो उसका दिल धक् से बैठ गया। सड़क टूट चुकी थी, और उसकी जगह पर एक गहरी खाई अपना मुँह फाड़े खड़ी थी। यह उसकी जमीन के ऐन ऊपर था। और इसी खाई में पत्थर की चट्टान गिरकर एक जगह रुक गई थी। बारिश का पानी इसी में बह बहकर नीचे इकट्ठा हो रहा था। जानकू देखकर व्याकुल हो उठा। थोड़ी ही देर में मिट्टी, पत्थरों और रुके हुए पानी का सारा बोझ उसकी जमीन पर आन पड़ेगा और देखते-ही-देखते सारी जमान बह जायगी।

जानकू ने चिल्लाकर रेज़र को आवाज दी, लेकिन सन्नाटे में से आवाज पहाड़ों पर टकराकर लौट आई। जानकू को कोई जवाब न मिला। जानकू क्षण भर में समझ गया कि अब सड़क को मिलाने के लिये पुल की जरूरत होगी, न केवल पुल की ही, बल्कि दो तीन दीवारों की भी,—और छन-छन करते पैसे रेज़र की जेब में जाएंगे।

जानकू आँखें फाड़-फाड़कर खाई की ओर देखने लगा।

जानकू के हाथ अब भी थोड़ा काम कर सकते थे वह अब भी मरना नहीं चाहता था। किसान था, अनाज से प्रेम करता था। खेत में, दरार से हटकर, गन्दम के कुछ पौदे अब भी टेढ़े होकर खड़े थे। अगर उनके सिट्टे भी बच रहे तो बच्चे एक जून रोटी खा पाएंगे।

जानकू चट्टानों को पकड़ता हुआ नीचे उतर आया, और पागलों की तरह, जहाँ कहीं उसे गेहूँ का सिट्टा नजर आया, उसे तोड़ना शुरू कर दिया। गेहूँ के पौदे, जानकू के शरीर की तरह शिथिल और बेजान हो रहे थे।

गाँव में नर-सिंघे बजने लगे, और मेले के निमन्त्रण से वातावरण जाग उठा। जब नगारों और नर-सिंघों की आवाज जानकू के कान में पड़ी तो वह धरती पर बैठा हुआ, बार-बार एक पत्थर को उठाने की कोशिश कर रहा था, जिसके नीचे गन्दम के कुछ सिट्टे कुचले जा रहे थे।

पत्थर था तो छोटा-सा, लेकिन जानकू उससे जूझ रहा था। गाँव से आती हुई आवाजें भी, हजारों स्मृतियों से लदी हुई, उसकी चेतना को पूर्णतया न जगा पाईं। थोड़ी देर में देवता की झाँकी मटोर की ओर जाती हुई निकली। सजी हुई पालकी को गाँव के चार मुखिया उठाए हुए थे, उसके आगे और पीछे गाँव के लोग नगारे बजाते, नाचते, हँसते चले जा रहे थे, और सबसे पीछे, सोमी और गोपी भी, अपने दीन मैले कपड़ों में चले जा रहे थे।

जमीन के ऐन सामने वह दोनों खड़े हो गये और उनकी आँखें अपने बाप को ढूँडने लगीं। पत्थर के पास पड़े जानकू को यों जान पड़ा जैसे उत्तमी भी उनके पीछे आन खड़ी हुई है, और बार-बार उसकी ओर इशारा करती हुई उसे बुला रही है...

जब यह दृश्य जानकू की नजरों से ओझल हुआ तो उसे देवता की जोत नजर आई—घने, काले बादलों से घिरी हुई। महाराज के मुकुट

को काले बादल बार-बार लपेट रहे हैं, महाराज अब भी नाराज हैं, वह इन्हीं काले बादलों को उसकी खेती पर भेज देंगे।

जानकू को महाराज के आकार में फिर चढ़े हुए तेवर नजर आए और उसने नमस्कार के लिये हाथ उठाए। लेकिन हाथों में कोई स्फूर्ति न आई। वहीं के वहीं पड़े रहे—एक हाथ जमीन पर, लेकिन गतिहीन; दूसरा हाथ औंधा होकर घुटने पर!

जानकू अवाक् देखता रहा। धीरे-धीरे उसकी भयभीत आँखों के आगे, जोत को भी ढकती हुई, किसी दूसरे देवता की आकृति सामने आई। उसके सिर पर भी बादल थे, लेकिन उसके मुकुट को छू नहीं पाते थे, काली-काली भवें, लाल दमकता हुआ चेहरा—और, जानकू देखकर डर गया—उसके पाँव के नीचे उत्तमी की देह औंधी पड़ी थी और उसका दूसरा पाँव जानकू का दबोचने के लिये उठा हुआ था।

जानकू ने उत्तमी को पुकारा, लेकिन वह बोली नहीं, सहमी हुई नजरों से जानकू को देखती रही। उस देवता ने जोत को भी ढक लिया था। जानकू ने देखा कि इस देवता का क्रोध तो महाराज के क्रोध से भी अधिक है।

देवता का कद बढ़ता जा रहा था; उसके हाथ दो के बजाय अनगिनत हो रहे थे, और वह पहाड़ के ऊपर खड़ा चट्टानों को तोड़-तोड़ कर फेंक रहा था, और सब चट्टानें जानकू की खेती को कुचल रही थीं। उसकी सहस्र आँखों में क्रोध की ज्वाला नाच रही थी। सहसा वह देवता फिर छोटा होने लगा, उसकी बाँहें कम होते-होते फिर केवल दो ही रह गयीं। अब उसके पाँव थोड़ी सी जगह को घेरे हुए थे।

जानकू देख कर हैरान रह गया कि अब उसके पाँव के नीचे उत्तमी की देह भी न थी। उसके साधारण कपड़ों पर कीच था, और मोटे-मोटे बूट कीच से मिटैले हो रहे थे, जानकू की चेतना ने रेंजर को पहचान लिया। पर जानकू समझ न सका कि वह रेंजर है, या उसके भाग्य का

क्रुद्ध देवता। जो चट्टानें खेती को कुचल गयी थीं, वह इसी के हाथों से गिरी थीं, उत्तमी भी इसी के पाँव के नीचे पड़ी थी,—तो क्या यह जोत के देवता से भी बड़ा देवता है?—नहीं-नहीं, यह तो रेञ्जर है, रेञ्जर शामदास जो पठानकोट से दस बरस हुए आया था।

जानकू के निरुद्ध हाथ उसका गला घोंटने के लिये सिहर उठे। उसे इन्हीं चट्टानों में तोड़ डालने के लिये तिलमिला उठे। लेकिन देवता का शरीर फिर बढ़ने लगा, फिर उसके पाँव के नीचे उत्तमी की देह छट-पटाने लगी, फिर उसके अनगिनत हाथ चट्टानें तोड़-तोड़ कर उसकी खेती पर फेंकने लगे, और जानकू की पथराई हुई आँखें धीरे-धीरे सिकुड़ने लगीं!

अशान्त रूहें

करीब महीना भर बीमार रहने के बाद आज मैंने चारपाई छोड़ी और घर के नज़दीक एक बाग़ में टहलने के लिए गया। बाग़ उजड़ा हुआ और बहुत पुराना है जिसे किसी वक्त शायद ईस्ट इण्डिया कम्पनी ने बनवाया था। इस वक्त वहाँ कोई न था। बाग़ के निचले हिस्से में अलग-थलग एक रास्ता है, मैं इसी रास्ते पर थोड़ी देर टहलता रहा और फिर सुस्ताने के लिए एक बेंच पर जा बैठा।

थोड़ी ही देर बाद मुझे ऐसा लगा जैसे कोई मेरे नजदीक सांस ले रहा है। मुमकिन है थकावट की वजह से मुझे झपकी आ गयी हो, या शायद मैंने ख्याल न किया हो पर आँख उठाकर देखा तो एक आदमी बेंच के दूसरे कोने पर बैठा हुआ मेरी ओर देख रहा था। उमर में वह लगभग ४० का होगा, चेहरा पतला और जर्द-सा, कनपटियों पर के बाल सफ़ेद थे, और सिर पर के थोड़े-से रूखे बाल हवा में उड़ रहे थे। शक्ल-सूरत से कोई भला आदमी जान पड़ता था। मैं सँभल कर बैठ गया।

'कहिए... ?'

वह चुप रहा और इकटक मेरे मुंह की ओर देखता रहा। मैंने सोचा शायद मुझे पहचानने की कोशिश कर रहा है। थोड़ी देर बाद वह स्वयं बोल उठा :

'आप इस वक्त बाग़ में क्यों आये हैं, यह तो कोई घूमने का वक्त नहीं ?'

'मेरा स्वास्थ्य अच्छा नहीं, इसलिए घर में लेटे रहने के बजाय मैं यहाँ चला आया हूँ' मैंने जवाब दिया। वह फिर चुप हो गया लेकिन

मेरी ओर देखता रहा। एक तो उसका अचानक मेरे पास आकर बैठ जाना और फिर इकटक ताकना मुझे विचित्र सा लगा। मैंने कहा :

'मैंने आपको पहचाना नहीं।'

'मैं तो आपको अच्छी तरह जानता हूँ, आप—हैं न?'

'जी हाँ।'

थोड़ी देर फिर चुप। अब मैंने देखा कि वह भी आराम से बैठ गया है, लेकिन आँखें उसकी अब भी मुझे देख रही थीं।

'एक बात आप से पूछूं?'

'कहिए।' मैंने जवाब दिया।

'क्या आप सत्यवादी हैं?'

मैंने मुड़कर उसकी ओर देखा, तो उसने फिर पूछा :

'क्या आप दयानतदार हैं?'

मैं इस अजीब से सवाल पर दिल ही दिल में थोड़ा गुस्से भी हुआ और हैरान भी।

'यह आप क्यों पूछते हैं?'

'क्योंकि दयानतदार आदमी का स्वास्थ्य हमेशा ठीक रहता है। सत्यवादी का शरीर हमेशा शुद्ध रहता है।'

मैं हँस दिया लेकिन अब मेरा कुतूहल उसके बारे में बढ़ने लगा।

'क्या आप स्वामी विशुद्धानन्द को जानते हैं?'

'जी नहीं' मैंने जवाब दिया।

'वह १६२५ में इस शहर में आये थे। मैंने उन्हें दयानतदार रहने का व्रत दिया था, और उसे आज तक निभाता आ रहा हूँ।'

'तो आप कभी बीमार नहीं हुए?'

'जी नहीं, कभी नहीं।'

उसके इस तरह के सवाल जवाब मुझे मनोरञ्जक जान पड़े लेकिन वह शख्स इन्हें बहुत गम्भीर समझता था। मानो दयानतदार रहना जिन्दगी और मौत का सवाल हो।

'आप बड़े संयमी हैं, जो आप सत्यवादी और दयानतदार हैं, मैं तो यह दावा नहीं कर सकता' मैंने कहा।

'१६२५ से पहले मैंने सब मिलाकर ४६ रुपये ३ आने अनुचित ढङ्ग से कमाये थे। वह मैंने धीरे-धीरे अपनी तनख़ाह में से काटकर दो सालों में दान कर दिये। तब से मेरे मन पर से बददयानती का एक बोझ उतर गया।

अब के वह शख़्स ज़मीन को ओर देख रहा था और धीरे-धीरे कह रहा था :

'आत्मा पर से बददयानती का धब्बा धुल जाये तो आत्मा साफ़ हो जाती है। सफेद चादर की तरह साफ हो जाती है...'

'क्या आप नौकरीपेशा हैं?' मैंने पूछा।

'मैं रेलवे में टाइप सैक्शन का सुपरिंटेंडेंट हूँ।'

मेरी नज़र उस के धूल भरे पुराने बूटों पर पड़ी। वह एक ऐसे आदमी के बूट थे जो जियादह वक्त चलता रहता हो और ऐसा जान पड़ता जैसे आज तक किसी ने उन्हें पोंछा तक नहीं। उनके तस्मे तक खुले थे। सुबह ही वह सज्जन उनमें अपने पाँव डाल देते होंगे और दिन भर की धूल छानने के बाद रात को निकाल लेते होंगे। और सिर पर उड़ते हुए बाल, और ज़र्द सा चेहरा, उत्तेजित सी आँखें; मैंने सोचा, क्लर्क लोग तो खासे बन-सँवर कर रहते हैं।

'जो आदमी दयानतदार है वह सुखी है। तेइस साल की मेरी सर्विस है। मैं दफ्तर में केवल दफ्तर का ही काम करता हूँ। कभी कोई अपना निजी ख़त भी आ जाय तो नहीं पढ़ता। दिन में केवल ३ मिनट के लिए रोज़ गुसलख़ाने में जाता हूँ, और हर शनिवार मैं १८ मिनट जियादह काम कर लेता हूँ, ताकि वह कमी पूरी हो जाये।'

मैंने हिचकिचाते हुए पूछा :

'आप की आय कितनी है?'

'मैं ६०) रुपये लेता हूँ। मेरे लिए बहुत है। मैंने सर्विस २५) पर शुरू की थी।"

'आप का परिवार भी होगा ?'

'जी है। तीन लड़कियाँ और एक लड़का।'

'इतने बड़े परिवार का पालन आप ६०) रुपये में क्यों कर पाते होंगे।' मैंने पूछा।

'हमारे दफ्तर में एक बड़े अफसर चान्दवानी थे, आप ने उन्हें देखा होगा। उन्होंने एक बार मुझे दफ्तर में बुलाया और कहने लगे, 'मैं तुम्हारी सीनियर ग्रेड के लिए सिफ़ारिश करना चाहता हूँ'। मैंने हाथ बाँध दिये। मैंने कहा, जनाब मैं यह तरक्की नहीं चाहता। मेरी नज़रों में सब कंगाल हैं, भिखारी भी कंगाल है और महलमाड़ियों वाले भी कंगाल हैं, और हर क्षण कंगाल हो रहे हैं। एक कंगाल दूसरे कंगाल को क्या दे सकता है। थोड़े दिनों बाद उन्होंने फिर मुझे बुलाया लेकिन मैंने साफ़ कह दिया, आप मेरी आत्मा को पैसों से ख़रीदना चाहते हैं, आप स्वयं तो भ्रष्ट हो चुके हैं, मुझे भ्रष्ट करना चाहते हैं। तब वह चुप हो गये।'

'आपको कभी यह महसूस हुआ कि आपने ग़लती की ? मेरे विचार में तो आप की दयानतदारी को ही देख कर आपकी सिफारिश करना चाहते थे ?'

'क्या दयानतदारी का इनाम पैसे में है ? नहीं, रुपया आत्मा को भ्रष्ट कर देता है, क्या आप इतनाभी नहीं जानते ?'

'तो वह तरक्की आप को मिली ?'

'नहीं, मैं गढ़े में गिरने से बच गया।'

'तो दफ्तर के बाकी क्लर्क क्या सोचते होंगे ?' मैंने पूछा।

'उसके बाद दफ्तर वाले मुझे पागल कहने लगे। मैं सुन कर हँस देता। एक दिन सुबह मैं दफ्तर में दाखिल ही हुआ था कि एक ने कहा—लो, कञ्जर आज दो मिनट देर से आया है। मैंने सुन लिया और

बिना कुछ कहे अपनी मेज़ पर बैठ कर तीन बार धीरे-धीरे इस शब्द का उच्चारण किया—'कज़र', 'कज़र', 'कज़र',। फिर पैंसिल से एक कागज़ पर एक एक अक्षर करके इस शब्द को लिखा 'क' 'ज़्' 'ज' 'र'। फिर उच्चारण किया और ज़ोर से हँसने लगा। यह तो केवल चार अक्षर हैं मैंने कहा, बस और कुछ नहीं, एक शब्द मात्र है, बस। इसके बाद उन्होंने मेरे कई नाम पुकारे पर मैंने कोई ध्यान नहीं दिया। जब वह मुझ पर हँसते तो मैं उन पर हँसने लगता। मैंने समझ लिया कि इन शब्दों का कोई अर्थ नहीं होता।'

इस शख़्स की बातों से मेरा मन कुछ विचलित सा होने लगा। यह शख़्स जो बार बार कह रहा है कि मैं बहुत निश्चिन्त हूँ, मुझे कोई चिन्ता नहीं, शायद वास्तव में इतना निश्चिन्त है नहीं, अपने आप को धोखा दे रहा है। और जो आदमी ६०) में परिवार पालता हो उसे कई चिन्ताएं हो सकती हैं। उसकी काली बड़ी-बड़ी आँखें एक जगह पर टिकती न थीं। मानों अपने दिल की व्याकुलता से कहीं भाग जाना चाहती हों। लेकिन मैं शायद गलती पर था। उसने अपने आपको बहुत कुछ सिखा पढ़ा रखा था, और वह पूरी दयानतदारी से मानता था कि वह निश्चिन्त और सुखी है। मैंने धीरे से मुड़ कर उसकी ओर देखा, वह कुछ चुप था लेकिन उसकी आँखें उसी तरह बेचैन कभी इस तरफ और कभी उस तरफ देख रही थीं। उसी वक्त सामने एक छोटे-से पेड़ पर एक बुलबुल ऊपर की शाख़ पर आकर बैठ गयी। बाग़ में बुलबुल देख कर मुझे खुशी हुई कि सर्दी का मौसम तो ख़त्म हुआ। मैंने कहा: 'देखिए बुलबुलें आने लगी हैं, अब सर्दी खत्म हुई जाती है' लेकिन उसने कोई ध्यान न दिया, न ही बुलबुल देखने के लिए सिर तक ऊँचा किया।

मैंने वार्तालाप का सिलसिला जारी रखने के लिए फिर पूछा 'आप कहते हैं कि आप दफ्तर में अपना निजी ख़त तक नहीं पढ़ते, यह तो मेरे विचार में एक आदर्श को बहुत खींचने वाली बात है, कभी कोई

ज़रूरी काम का ख़त हो सकता है, दुःख सुख का तार आ सकता है जिसे सब काम छोड़ कर भी देखना पड़े तो देख लेना चाहिए।'

'आप तो समझदार आदमी हैं यह आप ने क्या कहा। एक नियम का पालन या हो सकता है या नहीं हो सकता। बीच का रास्ता कोई नहीं। और मैं दो मिनट के ख़त के लिए अपनी आत्मा को कलंकित कर लूँ, बददयानत हो जाऊं ? वह वक्त मेरा नहीं होता, सरकार का होता है, जिस में काम करने के लिए मुझे तनख्वाह मिलती है। मेरी माता के देहान्त का तार मेरा सम्बन्धी दफ्तर में ले आया था। मैं किसी सम्बन्धी से दफ्तर में नहीं मिलता। जब मैंने मिलने से इन्कार कर दिया तो वह क्रोध में तार मेरी मेज़ पर फेंक कर चला गया। मैंने वह तार शाम को घर लौट कर पढ़ा।'

'आप की माँ की मृत्यु हो गयी थी। आप को इस का खेद न हुआ कि आपने तार पहले क्यों न पढ़ा ?'

'मृत्यु पर खेद कैसा ? हम सब मर रहे हैं, हर क्षण मर रहे हैं, किसी की मौत पूर्ण हो जाती है तो हम उसे उस की मृत्यु कह देते हैं। मेरी माँ तो जन्म से ही मर रही थी, इस पर खेद कैसा ? यूँ तो मैं भी मर रहा हूँ, आप भी मर रहे हैं।'

'आप ने क्या गीता का अध्ययन किया है ?' मैंने पूछा।

'मैं किताब नहीं पढ़ता। पिछले पच्चीस सालों में मैंने कोई अख़बार या किताब नहीं देखी। किताबों में शब्द भरे रहते हैं, जिन का कोई अर्थ नहीं। मेरी आत्मा साफ़ है, उस पर बददयानती का कोई दाग़ नहीं। जो वक्त मिले मैं लोगों की सेवा करता हूँ, इस में भी शान्ति मिलती है। सेवा में बहुत शान्ति मिलती है।' वह शख्स फिर अपने आप से बात करने लगा था।

'मैं रोज़ रात को दो बजे उठता हूँ और अपनी सारी गली को पानी से धो देता हूँ, उस वक्त पानी आम होता है। सब गली वाले मुझ से खुश हैं। बहुत सोना अच्छा नहीं। मैं रात भर में केवल ३ घण्टे सोता

हूँ। नींद में जो सपने आदमी देखता है उनका आत्मा पर बुरा प्रभाव पड़ता है।'

इस विचित्र आदमी का पारिवारिक जीवन कैसा होगा मुझे कुतूहल हुआ।

'क्या आपकी स्त्री भी आपके साथ गली धोती है?'

वह घबराये हुए नेत्रों से मुझे देखने लगा: 'नहीं तो।'

'क्या वह इसे अच्छा नहीं समझती?'

'नहीं, इसीलिए वह सुखी नहीं। अपने कर्तव्य के प्रति बददयानत है, इसलिए उसे सन्तोष नहीं। मुझे धिक्कारती है, बच्चों को पीटती है। पहले मैं घर से निकल जाया करता था। साथ वाली गली धो दिया करता था, या एक मित्र के लड़के को गणित पढ़ा दिया करता था। इस तरह रात को सोने के वक्त या खाना खाने के वक्त पहुँचता था। मगर फिर मैंने सोचा कि यह अपनी स्त्री के प्रति द्वेष है। अब मैं घर पर ही रहता हूँ और जो कुछ वह कहती है, सहनशीलता से सुनता हूँ। आजकल उसको लड़कियों के ब्याह की चिन्ता है।'

उसकी इन बातों को सुन कर मुझे अचानक याद आया कि मेरे एक मित्र ने किसी एक शख्स का जिक्र किया था जो रात को उठ कर गलियाँ धोता है, और दोपहर को बाग़ में घूमता रहता है। क्या यह वही तो नहीं?

'हाँ, लड़कियों का ब्याह आजकल समस्या बन गयी है'—मैंने कहा।

'समस्या कैसी? आदमी किसी का क्या पालन कर सकता है? मैंने तो कभी चिन्ता नहीं की। संसार में कोई समस्या नहीं, संसार तो एक जलता कुण्ड है जिस में हर एक को अपनी आहुति देनी होती है, उसे तो यही देखना है कि उसकी आहुति स्वच्छ हो, आत्मा पर कोई धब्बा न आने पावे।'

अब मैं उसे पहचानने लगा था लेकिन सहसा वह शख्स उठ खड़ा हुआ।

'रात हो रही है, मैं रात के वक्त शहर के बाहर नहीं रहता। अपनी गली में चला जाता हूँ।'

'यह क्यों ?'

'रात के अन्धेरे में पिशाच और पापी घूमते हैं, और वायुमण्डल में अशान्त प्रेतात्माएँ उड़ती हैं। मैं इनकी संगति में नहीं रहना चाहता।'

'आप प्रेतात्माओं को मानते हैं ?'

'पाप ही सब से बड़ी प्रेतात्मा है। पापी लोगों के मरने के बाद उनका पाप जीवित रहता है जो रात के अन्धेरे में जाग उठता है, और चक्कर काटता है।'

'लेकिन आप को इसका क्या डर है ?'

'नहीं, मुझे कोई डर नहीं, डर कैसा ? मेरी दयानतदारी मेरी रक्षा करती है। लेकिन मैं अपनी आत्मा को मलिनता से बचाये रखना चाहता हूँ। अन्धेरे में आत्मा पर मलिनता का प्रभाव पड़ता है। मलिनता की छाया से आप भी बचिए। अन्धेरे में बाहर न घूमा कीजिए...'

और बिना कुछ कहे सुने वह विचित्र आदमी मुड़ कर चलने लगा और शीघ्र ही चील के दो बड़े-बड़े पेड़ों के नीचे से होता हुआ आँखों से ओझल हो गया।

यदि मेरे मित्र ने मुझे सत्य बताया था तो इन्हीं दो चील के पेड़ों के नीचे इस अभागे से पचीस साल पहले एक रात कोई अपराध हुआ था। किस प्रेरणावश वह अपराध हुआ एक व्याकुलता की कहानी है।

शिष्टाचार

जब तीन दिन की अनथक खोज के बाद बाबू रामगोपाल एक नौकर ढूँढकर लाये, तो उनकी क्रुद्ध श्रीमती और भी बिगड़ उठीं। पलंग पर बैठे-बैठे उन्होंने नौकर को सिर से पाँव तक देखा, और देखते ही मुंह फेर लिया :

"यह बनमानस कहाँ से पकड़ लाये हो ? इससे मैं काम लूंगी, या इसे लोगों से छिपाती फिरूंगी ?"

इसका उत्तर बाबू रामगोपाल ने अंग्रेज़ी में दिया :

"जानती हो तलब क्या होगी ? केवल बारह रुपये। इतना सस्ता नौकर तुम्हें आजकल कहां मिलेगा ?"

"तो काम भी वैसा ही करता होगा।" श्रीमती अंग्रेज़ी में बोलीं।

"यह मैं क्या जानूँ। नया आदमी है, हाल ही में अपने गाँव से आया है।"

श्रीमती जी की भवें चढ़ गईं :

"तो इसे काम करना भी मैं सिखाऊंगी ? अब मुझ पर इतनी दया करो जो किसी दूसरे नौकर की खोज में रहो। जब मिल जाए तो मैं इसे निकाल दूंगी।"

बाबू रामगोपाल तो यह सुनकर अपने कमरे में चले गये और श्रीमती दलहीज़ पर खड़े नौकर का कुशल-क्षेम पूछने लगीं। नौकर का नाम हेतू था और शिमले के नज़दीक एक गाँव से आया था। चपटी नाक, छोटा माथा, बेतरह से दाँत, मोटे-मोटे हाथ और छोटा-सा कद, श्रीमती ने गलत नहीं कहा था। नाम-पता पूछ चुकने के बाद श्रीमती

अपने दाएं हाथ की उंगली पिस्तौल की तरह हेतू की छाती पर दाग कर बोलीं :

"अब दोनों कान खोल कर सुन लो। जो यहाँ चोरी-चकारी की तो सीधा हवालात में भिजवा दूंगी। जो यहाँ काम करना है तो पाई-पाई का हिसाब ठीक देना होगा।"

श्रीमती का विचार नौकरों के बारे में वही कुछ था जो अक्सर लोगों का है कि सब मक्कार, गलीज़ और लम्पट होते हैं। किसी पर विश्वास नहीं किया जा सकता। सभी झूठ बोलते हैं, सभी पैसे काटते हैं, और सभी हर वक्त नौकरी की तलाश में रहते हैं, जो मिल जाए तो उसी वक्त घर से बीमारी की चिट्ठी मँगवा लेते हैं। इसीलिए श्रीमती जी का व्यवहार नौकरों के साथ नौकरों का सा ही था। यूँ भी घर में उनकी हुकूमत थी। जो उन्हें पतिदेव पर गुस्सा आता तो अंग्रेज़ी में बात करतीं, और जो नौकर पर गुस्सा आता तो गालियों में बात करतीं। दोनों की लगाम खींच कर रखतीं। उनकी तेज़ नज़र पलंग पर बैठे-बैठे भी नौकर के हर काम की जानकारी रखती, कि नौकर ने कितना घी इस्तेमाल किया है, कितनी रोटियाँ निगल गया है, अपना चाय में कितने चमचे चीनी उंडेली है। जासूसी नावलों की शिक्षा के फलस्वरूप उन्हें नौकरों की हर क्रिया में षड्यन्त्र नज़र आता था।

काम चलने लगा। हेतू कुरूप तो था ही, इस पर उजड्ड और गँवार भी निकला। उसके मोटे-मोटे स्थूल हाँथों में काँच के गिलास टूटने लगे, परदों पर धब्बे पड़ने लगे, और घर का काम अस्त-व्यस्त रहने लगा। श्रीमती दिन में दस-दस बार उसे नौकरी से बरख़ास्त करतीं। पर तो भी हेतू की पीठ मज़बूत थी, दिन कटने लगे, और बाबू रामगोपाल की खोज दूसरे नौकर के लिये शिथिल पड़ने लगी। नौकर उजड्ड और कुरूप था, पर दिन में केवल दो बार खाता था, उस पर वेतन केवल बारह रुपये। जो किसी चीज़ का नुकसान करता तो उसी की तनख्वाह

कटती थी। दिन बीतने लगे, हेतू के कपड़े मैले हो कर जगह-जगह से फटने लगे, मुंह का रंग और भी काला पड़ने लगा, और गाँव का जाट धीरे-धीरे एक शहरी नौकर में तबदील होने लगा। इसी तरह तीन महीने बीत गये।

पर यहाँ पहुँच कर श्रीमती एक भूल कर गईं। कहते हैं स्त्री में संकीर्णता का इलाज पुरुष के पास तो नहीं, पर प्रकृति के पास अवश्य है। श्रीमान् और श्रीमती के एक छोटा सा बालक था जो अब चार बरस का हो चला था, और प्रथानुसार उसके मुंडन संस्कार के दिन नज़दीक आ रहे थे। चुनांचि घर में बड़े उत्साह और प्यार से मुण्डन की तैयारियाँ होने लगीं। बेटे के वात्सल्य ने श्रीमती जी की आँखें आटे, दाल और घी से हटा कर रंगबिरंगे खिलौनों और कपड़ों की ओर फेर दीं, शामयाने और बाजे का प्रबन्ध होने लगा। मित्रों-सम्बन्धियों को निमन्त्रण-पत्र लिखे जाने लगे, और धीरे-धीरे चाबियों का गुच्छा श्रीमती जी के दुपट्टे के छोर से निकल कर नौकर के हाथो में रहने लगा।

आखिर यह शुभ-दिन भी आन पहुँचा। श्रीमान् और श्रीमती के घर के सामने बाजे बजने लगे। मित्र-सम्बन्धी मोटरों और टाँगों पर बच्चे के लिये उपहार ले ले कर आने लगे। फूलों, फ़ानूसों और मित्र-मंडली के हास्यविनोद से घर का सारा वातावरण जैसे खिल उठा था। श्रीमान् और श्रीमती काम में इतने व्यस्त थे कि उन्हें पसीना पोंछने की भी फुरसत न थी।

ऐन उसी वक्त हेतू कहीं बाहर से लौटा और सीधा श्रमान् के सामने आन खड़ा हुआ।

"हुजूर मुझे छुट्टी चाहिये, मुझे घर जाना है।"

श्रीमान् उस वक्त दरवाज़े पर खड़े अतिथियों का स्वागत कर रहे थे, हेतू के इस अनोखे वाक्य पर हैरान हो गये।

"क्या बात है ?"

"हुजूर मुझे घर से बुलाया है, मुझे आप छुट्टी दे दें।"

"छुट्टी दे दें ! आज के दिन तुम्हें छुट्टी दे दूँ ?" श्रीमान् का क्रोध उबलने लगा। "जाओ अपना काम देखो। छुट्टी-वुट्टी नहीं मिल सकती। मेहमान खाना खाने वाले हैं, और इसे घर जाना है।"

हेतू फिर भी खड़ा रहा, अपनी जगह से नहीं हिला। श्रीमान् झुंझला उठे।

"जाते क्यों नहीं ? छुट्टी नहीं मिलेगी।"

फिर भी जब हेतू टस से मस न हुआ तो श्रीमान् का क्रोध बेकाबू हो गया, और उन्होंने छूटते ही हेतू के मुंह पर एक चाँटा दे मारा।

"उल्लू के पट्ठे, यह वक्त तूने छुट्टी माँगने का निकाला है।"

चांटे की आवाज़ दूर तक गई। बहुत से मित्र-सम्बन्धियों ने भी सुनी, और आँख उठा कर भी देखा, मगर यह देख कर कि केवल नौकर को चाँटा पड़ा है, आँखें फेर लीं।

श्रीमती को जब इसकी सूचना मिली तो वह तो जैसे तन्द्रा से जागीं। हो न हो इसमें कोई भेद है। मैं भी कैसी मूर्ख हूँ जो इस लम्पट पर विश्वास करती रही, और सब ताले खोल कर इसके सामने रख दिये। इसने न मालूम किस-किस चीज़ पर हाथ साफ़ किया है, जो आज ही के दिन छुट्टी माँगने चला आया है। भागी हुई बाहिर आईं, और बराण्डे में खड़ी हो कर हेतू को फटकारने लगीं। उन्होंने वह कुछ कहा जो हेतू के कानों ने पहले कभी न सुना था। कुछ एक सम्बन्धी इकट्ठे हो गये, और जलसे में विघ्न पड़ता देख कर श्रीमान् को समझाने लगे। एक ने हेतू से पूछा।

"क्यों, घर क्यों जाना चाहते हो ?

हेतू चुपचाप खड़ा रहा, पहले कुछ कहने लगा, फिर इधर-उधर देख कर रुक गया और बोला :

"जी काम है।"

"क्या काम है ?"

हेतू ने फिर धीरे से कह दिया।

"जी काम है।"

इस पर श्रीमती का गुस्सा तो फिर भड़क उठा, मगर बाकी लोग तो बात को निबटाना चाहते थे, हेतू को चुपचाप धकेल कर परे हटा दिया। फिर पति-पत्नी में अंग्रेज़ी में परामर्श हुआ। आख़िर दोनों इसी नतीजे पर पहुँचे कि इस वक्त चुप हो जाना ही ठीक है। मुण्डन के बाद इसका इलाज सोचेंगे।

हेतू बजाय इसके, कि फिर काम में जुट -जाता, बराण्डे के एक कोने में जाकर बैठ गया और न हूँ न हाँ, चुपचाप इधर-उधर ताकने लगा। इस पर श्रीमान् आपे से बाहर होने लगे। पहले तो देखते रहे फिर उसके पास जाकर, उसे कड़क कर बोले।

"काम करेगा या मैं किसी को बुलाऊं ?"

हेतू ने फिर वही रट लगाई।

"साहब, मुझे जाने दो, मैं जल्दी लौट आऊंगा, मुझे काम है।"

आख़िर जब जलसे में बहुत से लोगों का ध्यान उसी तरफ जाने लगा तो दो एक मित्रों ने सलाह दी कि उसका नाम-पता लिख लिया जाए, उसकी तनख्वाह रोक ली जाए और उसे जाने दिया जाए। चुनांचि श्रीमान् ने अपनी डायरी खोली, उस पर हेतू का पूरा पता लिखा, नीचे अंगूठा लगवाया, और धक्के मार कर बाहर निकाल दिया।

दूसरे दिन श्रीमती ने अपना एक एक ट्रंक खोल कर अपनी चीज़ों की पड़ताल शुरू की। अपने जेवर, सिल्क के जड़ाऊ सूट, चाँदी के बटन, एक-एक कर के जो याद आया गिन डाला। मगर बड़े घरों में चीज़ों की सूची कहाँ होती है और एक-एक चीज किसे याद रह सकती है। श्रीमती जल्दी ही थक कर बैठ गईं।

"तुमने उसे जाने क्यों दिया ? कभी कोई नौकरों को यूं भी जाने देता है ? अब मैं क्या जानूं क्या-क्या उठा ले गया है ?"

"जाएगा कहाँ, उसकी तीन महीने की तनख्वाह मेरे नीचे हैं।"

"वाह जी, सौ-पचास की चीज ले गया तो बीस रुपये तनख्वाह की वह चिन्ता करेगा!"

'तुम अपनी चीजों को अच्छी तरह देख लो। अगर कोई चीज भी गायब हुई तो मैं पुलिस में इत्तला कर दूंगा। मैंने उसका पता-वता सब लिख लिया है।"

"तुम समझे बैठे हो कि उसने तुम्हें पता भी ठीक लिखवाया होगा!"

महीना भर बीत गया। हेतू की कोई खबर न मिली। उसकी जगह एक दूसरा नौकर आ गया और घर का काम पहले की तरह चलने लगा। जब श्रीमती जी को कोई चीज न मिलती तो वह हेतू को गालियाँ देतीं। पर श्रीमान् धीरे-धीरे दिल ही दिल में अफ़सोस करने लगे। कई बार उनके जी में आया कि उसके पैसे मनीआर्डर करा के भेज दें मगर फिर कुछ श्रीमती के डर से, कुछ अपने सन्देह के कारण, रुक जाते।

एक दिन, शाम का वक्त था। श्रीमान् थके हुए दफ्तर से घर लौट रहे थे, जब उनकी नज़र सड़क के पार एक धर्मशाला के सामने खड़े हुए हेतू पर पड़ गई। वही फटे हुए कपड़े, वही शिथिल कुरूप चेहरा। उन्हें पहचानने में देर नहीं लगी। झट से सड़क पार कर के हेतू के सामने जा खड़े हुए, और उसे कलाई से पकड़ लिया।

"अरे तू कहाँ था इतने दिन! गाँव से कब लौटा है!"

"अभी-अभी लौटा हूँ साहब।" हेतू ने जवाब दिया।

"काम कर आया है अपना!"

हेतू ने धीरे से कहा।

"जी।"

"कौन-सा ऐसा जरूरी काम था जो जलसे वाले दिन भाग गया ?"

हेतू चुप रहा।

"बोलते क्यों नहीं, क्या काम था ? मैं कुछ नहीं कहूँगा, सच-सच बता दो।"

सहसा हेतू की आँखों में आँसू आ गये। होंट बात करने के लिये खुलते, मगर फिर बन्द हो जाते। बार-बार आँसू छिपाने का यत्न करता मगर आँखें ऐसी छलक आई थीं कि आँसुओं को रोकना असंभव हो गया था।

बाबू रामगोपाल पसीज उठे।

"क्यों क्या बात है ?" उसका कन्धा सहलाते हुऐ बोले।

"जी मेरा बच्चा मर गया था।" लड़खड़ाती हुई आवाज में हेतु ने कहा।

बाबू रामगोपाल को सुनकर दुःख हुआ। थोड़ी देर तक चुपचाप खड़े उसके मुँह की ओर देखते रहे, फिर बोले :

"मगर तुमने उस वक्त कहा क्यों नहीं ? तुम से बार-बार पूछा गया मगर तुम कुछ भी न बोले ?"

हेतू ने धीरे से कहा।

"जी, वहाँ कैसे कहता ?"

"क्यों ?"

"खुशी वाले घर में यह नहीं कहते। हमारे में इसे बुरा मानते हैं।"

और श्रीमान्, स्तब्ध और हैरान उस उजड्ड गंवार के मुंह की ओर देखने लगे।

अनोखी हड्डी

'स्वर्णदेश' के महाराज उदयगिरि पच्चास वर्ष की अवस्था तक पहुँचते-पहुँचते महाराजाधिराज हो गये। देश-देशान्तरों में उनकी विजय-पताका लहरा चुकी थी; उनके पराक्रम का कोई वारापार न था। अनेक बन्दी राजा, महाराज के दुर्ग में, अपने जीवन के अन्तिम दिन अन्धेरी दीवारों को देखते हुए काट रहे थे; और उन्हीं के राज्यों की अनेक सुन्दर रमणियाँ, महाराज के अन्तःपुर की शोभा बढ़ा रही थीं। जब भी महाराज की सेना किसी राज्य को रौंद कर लौटती, तो उनकी विपुल स्वर्ण-राशि और भी बढ़ उठती, और उनके स्वर्ण-मुकट में नये नये स्फटिक चमकने लगते। पर महाराज की आँखें अब भी क्षितिज पर अटकी हुई थीं।

वर्षा ऋतु के अन्तिम दिन थे। महाराज अपने मन्त्रियों के साथ, अपने राज्य के उत्तरी पर्वतों पर आखेट खेल रहे थे। दोपहर ढल रही थी जब महाराज एक नव-वयस्क हिरन का पीछा करते हुए अपना रास्ता भटक गये। आखेट की उत्तेजना में वह मीलों की दूरी तक अपना घोड़ा दौड़ाते चले गये। पर हिरन का कुछ पता न चला। जंगल की सीमा आन पहुँची, और महाराज थक कर एक पेड़ के नीचे खड़े हो गये। पर दूसरे ही क्षण महाराज ने आँख उठाकर देखा तो पुलकित हो उठे। ढलते सूर्य के रञ्जित प्रकाश में, सामने, एक वृहदाकार पर्वत, अपना गर्वपूर्ण माथा ऊंचा किए खड़ा था; और उसके पाँव पर एक विशाल नीली झील बिछी थी। झील इतनी स्वच्छ और निर्मल थी, मानो प्रकृति के अथाह सौन्दर्य को इम्बित करने का दर्पण हो। पहाड़ की तलाइयाँ देवदारु के वृक्षों से लदी पड़ी थीं। दाईं ओर की तलाई पर

एक छोटा-सा नगर बसा हुआ था, जिस के घरों की छतें, सायंकाल के धुंधले प्रकाश में, दूर तक फैली हुई नजर आ रही थीं।

महाराज इस सुनहले दृश्य को इकटक देख रहे थे, जब उनके साथी उन्हें ढूंढते हुए आन पहुँचे।

"मैं न जानता था कि मेरे राज्य में ऐसे सुन्दर प्रदेश भी मौजूद हैं।' महाराज ने कहा।

जिस पर महामन्त्री ने हाथ बांध कर धीरे से उत्तर दिया :

"महाराज यह प्रदेश आप की राज्य-सीमा से बाहिर है। आपकी राज-सत्ता यहाँ पर समाप्त हो जाती है, जहाँ पर महाराज खड़े हैं।"

"तो क्या यह प्रदेश मेरे राज्य का अंग नहीं है?"

"नहीं महाराज, यह एक छोटा-सा स्वाधीन देश हैं, जिस के लोग मछलियाँ पकड़ कर अपना निर्वाह करते हैं।"

महाराज के मन में एक गहरी टीस उठी, और उनकी आँखें ईर्श्या से विचलित हो उठीं :

"यह मेरे राज्य का अंग नहीं है..." फिर अपने हाथों की उंगलियाँ एक मुट्ठी में समेटते हुए दृढ़-निश्चय से बोले : "आज ही लौट कर सेना को तय्यार करो, महामन्त्रि, मैं स्वयं इस प्रदेश पर चढ़ाई करूंगा। मेरे राज्य की सीमा अब वह पर्वत-शिखर होगा।" कहते हुए महाराज वहाँ से लौट पड़े।

इस सुन्दर साक्षात् के बाद अभी दस दिन भी न बीत पाए थे कि वह शान्त वनस्थली, सैनिकों के सिंहनाद से गूंजने लगी। जंगलों के हिंसक पशु भी महाराज के पराक्रम के सामने त्रस्त होकर भाग उठे। झील की शान्त जल-राशि, जिस पर पहले गाते हुए माहीगीर मछलियाँ पकड़ते थे, अब उन्हीं के खून से लाल होने लगी। महाराज के वीर-सैनिकों की बाण-वर्षा पेड़ों और पत्थरों को भी क्षत विक्षत करने लगी।

तीन दिन बीत गये। महाराज की सेना झील पार करके नगर की दीवारों तक जा पहुँची। पर तो भी माहीगीरों ने हथियार नहीं डाले। रात के समय, जहाँ महाराज की सेना में विजय का कोलाहल होता, वहाँ नगर पर मरघट की सी स्तब्धता छा जाती। कहीं पर कोई टिमटिमाता दीपक भी नजर न आता। माहीगीर दिन भर लड़ते, रात को अपने मृत सम्बन्धियों को ठिकाने लगाते, और जब इस कराल अन्धकार में उन्हें आशा की कोई रेखा नजर न आती तो वह अपनी जननी-माता धरती को हाथ लगा कर, अपने प्राणों की बलि दे देने की शपथ ले लेते।

प्रातःकाल का समय था। महाराज अपने शिविर में बैठे, अपने मन्त्रियों के साथ नये आक्रमण का आयोजन कर रहे थे, जब द्वारपाल ने आकर प्रणाम किया :

"महाराज, एक आदमी द्वार पर खड़ा आपसे मिलना चाहता है।"

"कौन है ?"

"कोई बूढ़ा आदमी है, महाराज।"

"कोई राजदूत होगा।" एक मन्त्री ने कहा।

"या छद्मवेष में कोई सैनिक होगा।" दूसरे मन्त्री ने कहा।

"उसके पास कोई अस्त्र नहीं महाराज, वह बहुत बूढ़ा है, और लाठी के सहारे बड़ी कठिनता से खड़ा हो पाता है।"

महाराज ने प्रवेश की स्वीकृति दे दी। और थोड़ी देर बाद एक वृद्ध पुरुष, एक लम्बा, मैला सा चुग़ा पहने, अवस्था के बोझ के नीचे दबा हुआ, लाठी पर झुक कर चलता हुआ, महाराज के सामने आ खड़ा हुआ।

"क्या है, वृद्ध ? तुम कौन हो ? मेरे पास समय बहुत थोड़ा है।"

बूढ़ा नमस्कार करते हुए बोला :

"महाराज, समय तो मेरे पास भी बहुत थोड़ा है। महाराज के यश और कीर्ति से चारों दिशाएं गूंज रही हैं। मरने से पहले आप के दर्शनों की लालसा लिये चला आया हूँ।"

महाराज थोड़ी देर तक चुप बैठे रहे, फिर धीरे से बोले :

"शत्रु-देश से आए हो, वृद्ध ?"

"नहीं महाराज, मैं आप ही के राज्य का सेवक हूँ। यहाँ से थोड़ी दूर झील के किनारे मेरा झोंपड़ा है।"

महाराज ने फिर धीरे से पूछा :

"तुम क्या चाहते हो, वृद्ध ?"

"दान-दक्षिणा का प्रार्थी बनकर आया हूँ, महाराज। युद्ध के कारण मेरा काम बन्द हो गया है।" यह कहते हुए उसने अपने लम्बे वस्त्र की जेब में हाथ डाला, और एक छोटी-सी सफेद हड्डी का टुकड़ा निकालते हुए बोला :

"मुझे केवल इस हड्डी के तुल्य सोना दे दिया जाए, महाराज, मुझे और कुछ नहीं चाहिये।"

महाराज ने हड्डी को देखा—नाखुन से बड़ी वह हड्डी न थी, और उसे देखकर अकस्मात् हंसने लगे :

"वृद्धावस्था में लोग पागल हो जाते हैं। इस हड्डी के तुल्य तो कण-भर सोना भी न आएगा, वृद्ध।"

"मेरे लिये वह भी निधि के समान होगा, महाराज।" वृद्ध ने कहा।

महाराज ने हंसते हुए तुला मंगवाने का आदेश दिया, और अपने पास पड़े हुए चान्दी के थाल में से दो स्वर्ण-मुद्राएं उठा कर वृद्ध की ओर फैंकीं :

"इनके साथ हड्डी को तौल लो, वृद्ध।" और फिर काम में लग गये।

तुला आई। एक पलड़े में हड्डी का टुकड़ा रखा गया, दूसरे में दो मुद्राएं। पर जब मन्त्री ने तोला तो हड्डी का टुकड़ा भारी निकला। महाराज लज्जित हुए, और फौरन ही दो मुद्राएं और निकाल कर तुला में डाल दीं। याचक की प्रार्थना भले ही छोटी हो, पर दानी के दान में उदारता होनी चाहिये।

पर हड्डी का पलड़ा फिर भी भारी निकला।

महाराज हैरान हुए, और तुला में से हड्डी को निकाल कर देखने लगे। फिर उत्तेजित हाथों से चान्दी के थाल में से एक साथ मुट्ठी भर मुद्राएं निकाल कर तुला में डाल दीं, और तुला को अपने हाथ में लेकर स्वयं तोलने लगे।

पर पहले की तरह हड्डी का पलड़ा अब भी भारी निकला।

सब दरबारी चकित हो पास आ गये। वृद्ध हाथ बांधकर बोला :

"महाराज, मैं अपनी हड्डी को वापिस लेता हूं। शायद आपके पास इसके बराबर सोना दान के लिये नहीं है।"

महाराज इस अपमान को सहन न कर सके। एक बड़ी तुला के लाने का आदेश दिया, और हड्डी को उठाकर बार-बार मसल कर देखने लगे। बड़ी तुला आई, और उसमें एक तरफ यह तुच्छ सी सफेद हड्डी, और दूसरी तरफ चमकती मोहरों से भरा सारा का सारा थाल उंडेल दिया गया।

पर हड्डी का पलड़ा ज्यूं का त्यूं भारी निकला।

"यह जादू की हड्डी है वृद्ध, तुम मेरा अपमान करने आए हो।" महाराज की आंखें दम्भ और क्रोध से लाल हो उठीं। न वह हड्डी को बाहिर फैंक सकते थे, न ही उसके बराबर सोना जुटा सकते थे।

इस से भी बड़ी तुला मंगवाई गई। मोहरों के स्थान पर सोने की ईंटें रख दी गईं।

पर नन्हीं सी सफेद हड्डी फिर भी भारी निकली!

एक पागल जुआरी की तरह महाराज उस तुला पर अपनी स्वर्ण-राशि लुटाने लगे। दरबारी चित्रवत् खड़े इस अनोखे व्यापार को देख रहे थे। महाराज के माथे पर पसीने के बिन्दु नजर आने लगे।

वृद्ध पास खड़ा धीरे से बोला :

"महाराज उदयगिरि, आप का राज्य बहुत विशाल है। पर आपके राज्य की धन-राशि तो क्या, संसार भर के राज्यों में इसकी तुलना का सोना न मिल सकेगा।"

महाराज का सांस फूला हुआ था। वृद्ध की ओर देखकर बोले :

"क्या कहा, वृद्ध ?"

वृद्ध ने सिर झुका कर कहा :

"हां महाराज, संसार के सात सिन्धुओं का पानी भी यदि सोना बनकर आ जाए तो इस हड्डी की प्यास को न बुझा पाएगा।"

महाराज चुप हो गये। और इक टक वृद्ध के चेहरे की ओर देखने लगे। फिर धीरे से बोले :

"क्या बात है वृद्ध, इस हड्डी का क्या भेद है ?"

"यह कामना की हड्डी है, महाराज, इसकी प्यास सदा बढ़ती है, बुझती नहीं।"

महाराज विस्मय में आ गये। उनकी गम्भीर मुद्रा पर आवेश के स्थान पर पराजय और चिन्ता के भाव नजर आने लगे। उनकी आंखें, वृद्ध के चेहरे पर से हट कर उस अनोखी हड्डी पर आ गईं :

"तो वृद्ध, क्या संसार भर की धनराशि इस हड्डी से हल्की ही रहेगी ?"

"हां महाराज" वृद्ध ने कहा, फिर धीरे से बोला :

"इस माहीगीर नगरी का धन तो इसके पलड़े को छू तक न पाएगा।"

"तो वृद्ध, क्या इस हड्डी की तुलना संसार की कोई भी वस्तु नहीं कर सकती ?"

वृद्ध मुस्कराया, फिर धीरे से अपने पास खड़े एक सैनिक के हाथ में से, उसकी कटार ले ली, और दूसरे ही क्षण अपने हाथ को ज़ख़्मी कर लिया।

"यह तुम ने क्या किया वृद्ध ! अपना हाथ काट लिया ?" महाराज ने हैरान होकर पूछा।

वृद्ध ने अपने ज़ख़्मी हाथ पर से टपकते लहू की एक बूंद तुला में डाल दी। देखते ही देखते, हड्डी का पलड़ा ऊंचा उठने लगा, और खून की बूंद भारी हो उठी।

"महाराज, मेरे बूढ़े लहू में तो कोई स्पन्दन नहीं, कोई जीवन नहीं, पर एक युवक का लहू, या एक सरल बालक के शरीर का लहू तो अपने स्पर्शमात्र से हड्डी को हिला देगा।"

महाराज विचलित हो उठे, और चुपचाप शिविर में से बाहिर निकल कर झील के सामने आ खड़े हुए। बाणों की वर्षा अब भी उसी वेग से चल रही थी, और नगर की ओर से युद्ध की हाहाकार पहले से भी अधिक ऊंची हो उठी थी। चुपचाप खड़े महाराज, बड़ी देर तक कभी हड्डी को, और कभी झील के रक्त-रञ्जित पानी को देखते रहे।

कहते हैं, दूसरे दिन प्रातः जब युद्ध की दुन्दुभि बजने का समय हुआ, तो माहीगीरों ने देखा कि महाराज उदयगिरि की सेनाएं वापिस लौट रही हैं, और वनों में से भागे हुए पशु-पक्षी फिर से वापिस लौटने लगे हैं।

—[एक लोक-कथा पर आधारित]

तमग़े

अपनी सुशिक्षिता, सुचारु भौजाई से एक दिन पूछा—'बहिन जी, अगर जंग छिड़ गई तो क्या होगा ?' तो विमुखता से मुंह टेढ़ा करके बोलीं—'मैं तो कहती हूं एक बार दोनों तरफ जी-खोल कर लड़ लें, यह रोज की चिख-चिख जो अखबारों में पढ़ते हैं ; वह तो खत्म होगी।' एक ही वाक्य में उन्होंने अपना फैसला कह सुनाया। फिर एक रोज, अपने पड़ोसी, शान्तमुख, श्वेतवसन, पुराने देशसेवक श्री दौलतराम जी वाली से यही प्रश्न जो पूछा कि वाली जी, जंग के बादल फिर गरजने लगे हैं, जो जंग छिड़ गई तो क्या होगा ?' तो वह सज्जन चलते-चलते रुक गये, और अपने बाँएं हाथ की उंगली पहले आसमान की तरफ, फिर मेरी तरफ हिलाते हुए बोले : 'याद रखो, दो चीजों पर इन्सान का कोई बस नहीं, एक जंग और दूसरी मौत। जो जंग होगी तो होगी, जो नहीं होगी तो नहीं होगी, हम-तुम कुछ नहीं कर सकते। इसी तरह यह प्रश्न तरह-तरह के लोगों से पूछने के बाद एक दिन मैंने अपनी माँ से भी जा पूछा, जो न सुशिक्षिता हैं न देश-सेविका। वह चुपचाप मेरे मुंह की ओर देखने लगीं, और फिर बोलीं :

"तुम राजो को भूल गये हो ?"

"राजो, कौन राजो ?" मैंने हैरान होकर पूछा।

"राजो, जिसने तुम्हें एक तमगा दिया था।"

क्षण भर में मेरी आँखों के सामने राजो धोबन का ऊँचा कद और लाल दमकता हुआ चेहरा याद हो आया, और फिर वह सारी वार्ता याद हो आई जो आज से लगभग तीस वर्ष पहले घटी थी, जब

मैं छोटा-सा लड़का था। राजो धोबन ने मुझे एक चमकता हुआ सफेद तमगा दिया था, जिस पर शाह जार्ज पञ्चम की तस्वीर थी।

मैं चुप रहा, कुछ कहने का साहस न हुआ। मैं अपनी माँ का अभिप्राय कहाँ तक समझा सकूंगा, कह नहीं सकता, परन्तु उस वार्ता का कुछ हिस्सा जरूर सुनाना चाहता हूँ जिसमें मुझे वह तमगा मिला था।

दरअसल वह तमगा मेरे लिए नहीं था; वह तमगा राजो धोबन के बेटे मीरज़मान का था, जो पहली जंग में सिपाही बनकर गया था।

उन दिनों मैं बहुत छोटा था और मेरी याद उस जंग के बार में बड़ी धूमिल और अस्पष्ट है। केवल इतना याद है कि मैंने कई बार गोरा फौज देखी थी जो कभी-कभी हमारे घर के नजदीक जर्नैली सड़क पर से गुजरती थी; और हम मुहल्ले के लड़के उसे देखते न थकते थे। जब फौज चलती तो सब फौजियों के पाँव एक साथ उठते जिससे तलवों की एक लम्बी सफेद रेखा खिंच जाती, जो हर क्षण बुझती और फिर बन जाती थी। इसी तरह उनके सफेद हाथों की रेखा बनती और बुझती थी। पर जंग के खात्मे तक मैं कुछ बड़ा हो गया था, और मुहल्ले के जीवन को थोड़ा पहचानने लगा था।

हम जिस मुहल्ले में रहते थे वहाँ अधिकतर कच्चे मिट्टी के मकान थे जिनमें टाँगा हाँकने वाले छाछी लोग रहा करते थे। रोज़ शाम को वह लोग सड़क के किनारे खाटें बिछा लेते और हुक्के का दम लेते हुए आपस में जंग की बातें किया करते। उन्हीं के वार्तालाप में पहली बार मैंने मिसर, ईरान, बसरा, इटली और फ्रांस के नाम सुने थे। इन्हीं के बहुत से सम्बन्धी, कुछ मुहल्ले में से, कुछ मसियाड़ी, नूरपुर वगैरह गाँवों में से फौज में गये हुए थे। और अब जंग के खात्मे पर वह एक एक करके लौट रहे थे। कभी कोई जहाज हिन्दुस्तान के किसी दूरवर्ती बन्दरगाह पर लंगर डालता तो हमारे मुहल्ले की चहल-पहल

बढ़ जाती। फिर एक दिन मिठाइयाँ बटने लगतीं, किसी-किसी घर में ढोलक बजती, और कुछ दिनों के बाद दो तीन जवान, मूछों को ताव दिये हुए, तुर्रे हवा में लहराते हुए, मुहल्ले में घूमते हुए नज़र आते, मुहल्ले भर के बुजुर्गों के पाँव छूते, सम्बन्धियों से बगलगीर होते और शाम के वक्त खाटों पर आ बैठते और अपनी-अपनी जंग की कहानियाँ कहते। या फिर किसी-किसी रात ऊंचा-ऊंचा रोने और चिल्लाने की आवाजें आने लगतीं, और मुहल्ले भर में खबर घूम जाती कि फलां घर का आदमी जंग में मारा गया है। वही औरतें जो एक घर में ढोलक बजाने जातीं, वही अपने बुरके पहने, दूसरे घर में शोक मनाने चली जातीं।

देखते ही देखते हमारे मुहल्ले का वातावरण बदलने लगा था। बूढ़ा फैज़अली लौट कर आया ; जिस ने अपनी सारी पोशाक बदल ली, मगर सिर पर की नीली और सफेद पगड़ी नहीं उतारी, क्योंकि वह हुजूर गवर्नर बहादुर की बग्घी का पियादह रह चुका था, और यह उस की वर्दी की पगड़ी थी। हमारा पड़ोसी जलालखान सूबेदार बनकर लौटा। जब वह लौटा तो लोग उसके बारे में जंग से भी ज्यादह चर्चा करने लगे। मेरे दोस्त कहते कि जलालखान ऊंटों पर रुपयों के बोरे लाद कर लाया है। कोई कहता जलालखान फौजी नहीं डाकू है। मगर सबके सब उससे खम खाते थे क्योंकि हर तीसरे दिन उसे दो खच्चरों वाली एक बग्घी छावनी ले जाती थी, जिस पर वह हुजूर डिप्टी कमिश्नर साहिब बहादुर को सलाम करने जाता था। वह जंग में से बहुत अमीर होकर लौटा था। लोग कहते यह सब भरती का रुपया है, जलालखान को सिपाही भरती करने के फी कस दो-दो रुपये मिले थे। कोई कुछ कहता कोई कुछ। चन्द ही दिन बाद उसने हमारी गली के बाहिर एक नीले रंग का लोहे का फट्टा लगवा दिया जिस पर सफेद अक्षरों में लिखा, 'कूचा सरदार जलालखान।'

इसी तरह मेरे मासड़ फ्रांस में से लौट कर आए, और अपने साथ फौजी वर्दी में खिंचवाई हुई तीन तसवीरें भी लाए। कोई फौजी बसरे की बात कहता और कोई मिसर की। गलियों में लड़के अपनी फौजें बना-बना कर फ्रांस और जर्मन की लड़ाई का खेल खेलने लगे थे।

एक एक करके बहुत से फौजी लौट कर आ गये, मगर राजो धोबन का बेटा मीरजमान लौटकर नहीं आया। मैं अब समझ सकता हूं कि क्यों राजो धोबन हर रोज कई-कई घण्टे तक हमारी माँ से बातें किया करती थी, क्यों दोनों जलालखान को 'मुआ कसाई' कह कर पुकारती थीं, और क्यों राजो धोबन जब मुझे देखती तो मेरे सिर पर बार बार हाथ फेर कर मुझे चिरायु होने की दुआएं दिया करती थी।

राजो की उमर उस वक्त कोई चालीस वर्ष को होगी। वह एक मुसलमान बेवा थी। उसका खाविन्द करोम बख्श कोई इमारती राज-मिस्त्री था जो एक दिन बनते मकान की छत पर से गिर कर मर गया था, और उसके मरने के बाद राजो ने कपड़े धोने का काम शुरू कर दिया था। उसका बेटा मीरजमान कपड़ों की गठरियाँ एक गधे पर लाद कर रोज नदी पर जाया करता था। मीरजमान को मुहल्ले में सब लोग जानते थे क्योंकि वह मुहल्ले भर का सब से शैतान लड़का समझा जाता था। मुहल्ले का कोई टाँगा न था जिस पर वह कूद कर न चढ़ा हो, कोई दीवार न थी जो उसने न फांदी हो; कोई बुर्के वाली औरत न थी, जिस की गालियाँ उसने न सुनी हों। शाम के वक्त जब हम अपने-अपने घरों को चले जाते तो वह गलियों में गाता हुआ घूमता। उस वक्त मेरी माँ, अपने दाँतों तले जबान काट कर, मुझे अपने कान बन्द कर लेने को कहतीं, क्योंकि मीरजमान इश्किया टप्पे गाया करता था। जब वह 'दन्द मोतियाँ दे दाणे.....' गाता हुआ हमारे घर के सामने से गुजरता, तो मेरे हाथ तो जरूर मेरे कानों को बन्द कर लेते, मगर मेरा दिल उसकी ताल के साथ ताल मिलाया करता। हम सब मुहल्ले के लड़कों को मीरजमान के गाये हुए गीत, 'बालो' से

लेकर 'बलिये' तक कण्ठस्थ हो गये थे। फिर न मालूम कब मीरजमान फौज में भरती होकर हमारे मुहल्ले में से चला गया, और किस लालच में आकर राजो ने उसे घर से भेज दिया। पर अब मेरी माँ और राजो धोबन बड़ी अधीर होकर उस की बातें किया करतीं।

उन्हीं दिनों एक छोटी-सी घटना घटी जिसने राजो को और भी अशान्त कर दिया। एक दिन रात के वक्त हमारे मुहल्ले में शोर होने लगा, और ऊंची-ऊंची आवाजें आने लगीं। और एक आदमी जो अन्धेरे में नजर न आता था, जलालखान के घर के सामने ललकारता और गालियाँ बकता हुआ, बार-बार एक कुल्हाड़े के साथ, उसके घर के दरवाजे को तोड़ने लगा। जलालखान के घर में अंधेरा था, और न मालूम वह घर में था या नहीं। फिर बहुत से लोग इकट्ठे हो गये और शोर धीरे-धीरे खत्म हो गया और वह आदमी भी चला गया। बाद में हमें मालूम हुआ कि वह आदमी गुजरखान से आया था। उसका भाई जंग में मारा गया था और उसका सन्ताप और गुस्सा वह जलालखान पर निकालने आया था, क्योंकि जलालखान ने जबरन उसे भरती करवाया था।

अब सोच सकता हूँ कि राजो धोबन के दिल पर उन दिनों क्या गुजरती होगी। मुहल्ले में सब लोग उसे दिलासे देते थे। कोई कहता कि उसने मीरजमान को बसरे में देखा था। कोई कहता फ्रांस में जहाँ दरिया के किनारे उसकी पलटन का कैम्प था। मगर राजो मां थी और मां अपने पास सोए हुए बच्चे को देखती हुई भी अशान्त रहती है, पांच साल से बिछुड़े हुए जवान बेटे का सोच कर कैसे सब्रसन्तोष से रह सकती थी। जिस तरह एक यन्त्र का चलन एक सुई पर अटका रहता है, राजो का जीवन-व्यवहार, सारी चिन्ताएं, सारी आशाएं मीरजमान पर अटकी हुई थीं। जो वह लोगों के घरों में काम करती तो उसी के लिए, जो वह दिन में पाँच बार नमाज पढ़ती तो भी उसी के लिये, और जो

वह राह जाते बालकों के लिये चिरायु होने की दुआ करती तो भी उसी के लिये। मीरजमान के नाम को कलेजे से लगाए वह जो रही थी।

फिर एक दिन राजो दौड़ी-दौड़ी हमारे घर आई और आते ही माँ के गले से लिपट गई। मीरजमान वापस लौट रहा था। उसे छावनी से चिट्ठी आई थी, जिसे वह हाथों में उठाए हुए थी। आज भी मुझे राजो का चेहरा स्पष्ट याद है, जो उन सर्दी के दिनों में भी पसीने से तर था और राजो की आखों में से खुशी के आँसू बह रहे थे। बार-बार राजो चिट्ठी को छाती से लगाती, उसे चूमती, अपनी आँखें पोंछती, और बार-बार माँ से लिपट जाती। शाम तक हमें टाँगे वालों की बैठक में से मालूम हो गया कि मीरजमान का जहाज अदन की बन्दरगाह से चल आया है; और वह बड़े दिनों में कराची पहुँचेगा और नये साल की परेड पर उसे बहादुरी का तमगा मिलेगा, क्योंकि उसने जंग में किसी अंग्रेज़ अफसर की जान बचाई है। उस दिन सारी शाम हुक्के के धुएं में मीरजमान की चर्चा होती रही। राजो ने मेरे हाथ चार आने पैसे देकर भेजा कि फैजअली को देकर कहो कि सबको कहवा पिलाए। लोग तरह तरह के अनुमान लगा रहे थे। कोई कहता मीरजमान को ऊंचा दर्जा देकर फौज में रखेंगे, कोई कहता पेंशन देकर बरखास्त कर देंगे। कोई कहता सात रुपये पेंशन होगी, कोई कहता ग्यारह रुपये। फैजअली बार-बार अपनी दाढ़ी पर हाथ फेर कर कहता—'इन्साफ देखा है तो अंग्रेज का। धोबन के बेटे को सरकार तमगा देगी।'

राजो खुशी से बावली हो रही थी। हमारे घर के नजदीक एक मस्जिद थी जहाँ उसने एक दिन भिखमंगों को खाना खिलाया। एक दिन एक हमसाए की बेटी 'अकरां' नाम की लड़की को माँ के पास पकड़ कर ले आई और उसकी ठुड्डी पकड़ कर बार-बार उसका चेहरा दिखाती हुई कहने लगी—"मैं इसके साथ अपने मीरजमान का ब्याह करूंगी, तुम्हें पसन्द है?" अकरां कोई तेरह-चौदह बरस की लड़की होगी जो हाल ही

में, मुहल्ले के लड़कों के साथ खेलना छोड़ कर घर के पर्दों के पीछे जा छिपी थी।

नया साल आया। अभी प्रभात भी न फूट पाई थी, और जमीन पर कोहरा और हवा में धुन्ध छाई हुई थी जब छावनी से तोपों की आवाज आने लगी। मैं कोहरे में ठिठुरता हुआ घण्टा भर मासड़ जी के मकान के बाहर खड़ा रहा ताकि मैं भी परेड देखने जा सकूँ। जब मैं उनके साथ गली में से बाहर आया, तो जलालखान के घर के सामने वही दो खच्चरों वाली बग्घी खड़ी थी, और उसमें जलालखान के साथ फैजअली, और अपनी ज़र्द और लाल रंग की ओढ़नी में मुंह सिर लपेटे राजो धोबन भी बैठी थी। जलालखान ने हमें भी बग्घी में बिठा लिया और हम परेड के मैदान की ओर जाने लगे।

किन-किन रास्तों पर से होते हुए हम परेड ग्राउंड के पास पहुँचे मुझे याद नहीं। मगर दिन चढ़ रहा था जब छावनी के बड़े मैदान के पास हमारी बग्घी खड़ी हुई। खचाखच लोगों की भीड़ मैदान के बाहिर जमा हो रही थी, क्योंकि हमारे शहर में नये साल की परेड देखने सब छोटे बड़े जाया करते थे। मैदान के बाहिर लम्बी कांटेदार तार लगी थी, और तार के पीछे एक ऊंचा, पीले और नीले रंग का शामयाना खड़ा था। जलालखान हमें उस शामयाने की तरफ ले गया। शामयाने के बाहर गेट पर राजो को एक सिपाही ने रोक लिया, जिस पर राजो ने अपने आँचल में बन्धी हुई सरकारी चिट्ठी खोल कर उस के हाथों में दे दी।

'तुम्हारा बेटा है मीरजमान ?'

'जी।'

'अदन के जहाज पर आया है ?'

'जी।'

फिर फौजी ने फैजअली से पूछा :
'इसे क्यों साथ लाये हो ?'
'यह चिट्ठी जो इसे मिली है।' फैजअली ने जवाब दिया।
फौजी चुप रहा, मगर इकटक राजो के चेहरे की तरफ देखता रहा :
'उसकी परेड यहाँ पर नहीं है, पिछली बारकों में है।'
'बारकों में, किस तरफ ?' फैजअली ने पूछा।

इसके बाद इस ग्राउण्ड के पीछे, बारकों के झुरमुट में से निकलते हुए हम एक लम्बे हाल में जा पहुँचे, जिस की छत पर से अनेक रंग-बिरंगे झण्डे टंगे हुए थे और दीवारों पर तरह-तरह के चित्र टंगे हुए थे। हाल में कुर्सियों पर पहले ही से लोग बैठे थे और हाल के बीचोबीच एक चौड़ा रास्ता बना हुआ था जिस पर कई फौजी, वर्दी पहने हुए खड़े थे। जब से राजो छावनी में पहुँची थी उसकी आंखें हर तरफ मीरजमान को ढूँढ रही थीं। कोई वर्दी वाला जवान-सिपाही न था जिसे उसने घूर-घूर कर न देखा हो।

फिर हाल में एकदम सन्नाटा छा गया और लोग उठ खड़े हुए। हम लोग हाल की दीवार के साथ खड़े थे, केवल जलालखान हम से अलग हाल में एक कुर्सी पर जा बैठा था। हमने देखा, सामने एक ऊँचे प्लेटफार्म पर एक अंग्रेज़ अफसर आन खड़ा हुआ है। उसकी वर्दी पर जगह-जगह लाल रंग की टुकड़ियाँ लगी थीं और कनपटियों पर के बाल सफेद हो रहे थे और उसकी छाती पर बहुत से तमगे चमक रहे थे। जहाँ पर वह खड़ा था, वहाँ पर एक छोटी-सी मेज रखी थी, जिस पर हरे रंग का कपड़ा बिछा हुआ था और छोटे-छोटे चमकते हुए तमगे रखे थे।

अंग्रेज़ अफसर ने कुछ कहा, जो लोगों ने बड़े ध्यान से सुना और उसके बाद हाल में तालियाँ पिटीं। मगर उसके फौरन ही बाद फिर हाल में सन्नाटा छा गया और हाल में बैठे हुए लोग मुड़-मुड़ कर हाल

के पिछले दरवाजे की ओर देखने लगे। थोड़ी देर में हाल के पीछे से हल्की-हल्की आवाज आने लगी, जैसे कोई फर्श पर लोहे का टुकड़ा रगड़ रहा हो। इतने में पिछले दरवाजे में से दो गोरे सिपाही अन्दर दाखिल हुए और धीरे-धीरे प्लेटफार्म की ओर बढ़ने लगे। उनके फौरन ही पीछे एक बड़ा सा पलंग जिस पर सफेद चद्दर और लाल कम्बल में एक आदमी बैठा हुआ था, और जिसके नीचे चीं-चीं करते हुए पहिये लगे थे अन्दर लाया जाने लगा। उसके पीछे एक और पलंग था, और उसके पीछे तीसरा, चौथा, पाँचवाँ, इसी तरह लगभग सात पलंगों की कतार, एक के पीछे दूसरा, अन्दर लाये गये। सब पर सफेद चद्दरें बिछी थीं, सब पर लाल कम्बल रखे थे, और सब पर एक-एक जख्मी आदमी लेटा या बैठा हुआ था। मैंने अपने मासड़ जी से पूछा :

'यह कौन हैं ?'

'यह सब बहादुर सिपाही हैं, इनको तमगे मिलेंगे।'

हाल में बैठे हुए लोग बिल्कुल चुपचाप थे। केवल हमारे नजदीक राजो ने कुछ धीरे से कहा। मैंने उसकी तरफ देखा, उसका चेहरा पीला जर्द पड़ गया था, आंखें जैसे घबराहट में खुल गई थीं, और होंठ कांपने लगे थे। वह फैजअली के कोट की आस्तीन को पकड़े हुए थी, और उसके हाथों की उंगलियाँ कांप रही थीं।

चौथे पलंग पर मीरजमान बैठा था। मैंने उसे देखते ही पहचान लिया, हालांकि उसका चेहरा काला पड़ गया था और सिर के बाल मूंडे हुए थे। मीरजमान चुपचाप पलंग पर बैठा था और सीधा सामने की तरफ देख रहा था, जैसे उसे मालूम ही न हो कि उसकी माँ उसकी परेड देखने आई होगी। उसके दोनों हाथ उसकी गोद में पड़े हुए थे। राजो उसे देखकर लड़खड़ा गई, और फैजअली की आस्तान छोड़कर मीरजमान के पलंग की ओर जाने लगी, मगर फिर किंकर्तव्यविमूढ़

फैजअली के मुँह की तरफ देखने लगी। फैजअली ने उसे रोक दिया 'परेड में फौजी के पास कोई नहीं जा सकता। कर्नैल साहिब नाराज होंगे। जहाँ पाँच साल इन्तजार किया है, थोड़ी देर और ठहर जाओ।' और राजो चुपचाप, सिर पकड़ कर जमीन पर बैठ गई।

तमगे मिलने लगे। अंग्रेज़ अफसर ने एक तमगा मेज पर से उठाया, और पहले पलंग के पास पहुँच कर, जख्मी फौजी की छाती पर लगा दिया। फौजी का मुंह और सिर पट्टियों में छिपे हुए थे। हाल में तालियाँ बज उठीं। फिर दूसरे फौजी की बारी आई। उसके दोनों हाथ कटे हुए थे। उसकी छाती पर भी तमगा लग गया। बारी-बारी एक-एक फौजी की छाती पर, साहिब बहादुर के हाथ से चमकता हुआ सफेद तमगा लगने लगा। एक-एक तमगा लग चुकने के बाद हाल तालियों से गूंज उठता।

फिर मीरजमान की बारी आई। साहिब बहादुर ने उसकी छाती पर तमगा लगाने से पहले उसके कन्धे को थपथपाया। फिर एक सफेद तमगा, जिस पर लाल रिबन बंधा हुआ था उसकी छाती पर लगा दिया। मगर मीरजमान जूं का तूं बैठा रहा और सामने देखता रहा। उसके दोनों हाथ उसकी गोद में पड़े रहे। साहब बहादुर थोड़ी देर तक उसके सामने खड़े रहे, फिर अपना दायाँ हाथ पंजा मिलाने के लिये उसकी तरफ बढ़ाया। मगर मीरजमान फिर भी जूं का तूं बैठा रहा। थोड़ी देर के बाद मीरजमान का दायां हाथ गोद में से उठा, मगर कांपता हुआ, थोड़ा सा ऊँचा उठकर सहसा उसकी गोद में लुढ़क कर गिर गया। साहब बहादुर इस पर चुपचाप पांचवें पलंग की ओर चले गये। राजो अब भी दोनों हाथों में सिर थामे फर्श पर बैठी थी। उसने यह अभिनय नहीं देखा था।

इस घटना के लगभग महीने भर बाद की बात होगी जब राजो ने मुझे वह तमगा दे दिया। उस दिन मैंने पहली बार राजो को फफक-

फफक कर रोते देखा। उस शाम राजो के घर के नजदीक ढोलक बज रही थी, और हम मुहल्ले के लड़के वहाँ जा पहुँचे थे। अकरां लड़की का ब्याह एक नानबाई के बेटे के साथ हो रहा था, और बहुत से लोग गली में खड़े बरात का इन्तजार कर रहे थे। थोड़ी देर के बाद लड़के राजो के घर के सामने आ खड़े हुए, और दरवाजे में से झांक-झांक कर मीरजमान को देखने लगे, जो जूं का तूं खाट पर बैठा था, जो न हिलता, न जुलता, न बोलता, न हंसता, न रोता था। माँ ने कहा था कि अब वह ठीक नहीं होगा। पहले तो लड़के उस पर झाँकते रहे, फिर छेड़ने लगे। कोई दरवाजे पर खड़ा होकर उसे पुकारता, कोई दीवार पर चढ़ कर। फिर वह और भी लापरवाह हो गये। दो एक ने तो छोटे-छोटे कंकड़ भी मीरजमान पर फैंके। जिस पर राजो अपनी कोठरी से भागती हुई बाहर निकल आई। उसे देख कर लड़के भाग गये। मगर उन्हें एक नया खेल मिल गया। बार-बार वह लौट कर आते, और छिप-लुक कर, कभी दरवाजे पर से, कभी दीवार पर से मीरजमान का नाम पुकारते, और जब राजो सामने आती तो वह भाग जाते। इसी दौरान में राजो ने मुझे देखा, मैं गली में खड़ा था जहां अकरां के ब्याह की देगें पक रही थीं। वह मुझे अन्दर ले गई, और मुझे छाती से लगाकर जोर-जोर से रोने लगी। उसकी आँखें लाल और सूजी हुई थीं। थोड़ी देर बाद मुझे कहने लगी :

'तुम तो इन लड़कों के साथ मीरजमान को तंग नहीं करते हो ?'

'नहीं ! मैं क्यों करूँगा, वह मेरा भाई है।' मैंने अपनी मां के सिखाये के अनुसार जवाब दे दिया।

इस पर राजो ने मुझे छाती से लगा लिया और फिर बहुत देर तक रोती रही। उसके बाद वह उठी और दीवार के साथ पड़े हुए एक बक्से को खोल कर उसमें से मीरजमान का तमगा निकाल लाई और मेरी हथेली पर रख दिया और बोली :

'यह तुम ले लो। अब यह मीरजमान को नहीं चाहिये। पर मुझ पर एक मेहरबानी करो, इन लड़कों को यहाँ से लेजाओ। यह तुम्हारी बात मानेंगे। कहो, ले जाओगे ?'

... ...

इस सारी घटना को याद करते हुए मैं मां के चेहरे की ओर देखने लगा। मां की आंखें सजल हो रही थीं। क्षण भर के लिये मुझे ऐसा जान पड़ा जैसे मैं राजो धोबन के चेहरे की तरफ देख रहा हूँ. और गलती से जंग के बारे में यह सवाल राजो धोबन से पूछ बैठा हूँ।

क्रिकेट मैच

क्रिकेट मैच का तीसरा दिन था। दर्शकों का उत्साह ठण्डा पड़ चुका था। लोग अपना सारा जोश और देश-प्रेम, पहले दो दिन गला फाड़-फाड़ कर चिल्लाने और तालियाँ पीटने में खर्च कर चुके थे। और आज दर्शकों की संख्या एक तिहाई से भी कम थी; कुर्सियों की कतारों की कतारें खाली पड़ी थीं। कुछ लोग बैठे अख्बार देख रहे थे, कई एक मुंह को टोपी से ढांपे सो रहे थे; और अक्सर लोग मैच की ऊब से बचने के लिये सिगरेट पर सिगरेट फूँके जा रहे थे।

पर मेरे साथ बैठी हुई मेरे मित्र की स्त्री अब भी बराबर चहक रही थी:

"अगर आज दिन भर लॉसन और पीटर ही बाल फैंकते रहे तो हजारे आउट नहीं होगा। लॉसन तो बिल्कुल ही घटिया बाउलर है।"

वह जब से खेल शुरू हुआ था, पूरी तन्मयता से उसे देखे जा रही थी, और उस पर अनथक टीका-टिप्पणी कर रही थी। उस के हाथ बराबर सलाइयाँ पकड़े हुए स्वैटर बुन रहे थे, और आँखें मैच पर लगी हुई थीं। कोई बाउन्ड्री न थी जिस पर उसने ताली न बजाई हो, और कोई कैच न था जिस पर उसका सांस न रुका हो। मैं बार-बार उसकी हाँ में हाँ मिलाता, और उसके पति की ओर कनखियों से देखता।

सहसा हजारे आउट हो गया। लोगों में कुछ स्फूर्ति आई। क्रिकेट भी शतरंज की तरह है, जो गोटें पिटती रहें और खिलाड़ी आउट होते रहें तो खेल का मजा कायम रहता है।

"अब हमारी टीम क्या खेलेगी? बाकी खिलाड़ियों में तो कोई भी

टिकने वाला नहीं। अब कौन खेलने आएगा ? साढ़े बारह बजने वाले हैं, अब तो लञ्च के बाद ही खेल शुरू होगा, क्यों जी ?"

वह एक-एक वाक्य कहती और अनुमति के लिये अपने पति के चेहरे की ओर देखती।

तालियाँ पिटीं, एक दूसरा खिलाड़ी मैदान में उतरा :

"मोदी है, मोदी। इसे क्यों भेजा है ? यह तो आख़िर में जाना चाहिये था। अगर यह भी आउट हो गया तो फिर खेलेगा कौन ? क्यों जी ?"

यदि कोई जीव अपने वातावरण का रंग सबसे जल्दी पकड़ता है तो वह स्त्री है। तीन बरस पहले यह एक घरेलू, शर्मीली स्त्री थी, अपने दो बच्चों और घर-गिरस्ती में उलझी हुई। पर अब कन्धों पर जाली की गुलाबी रंग की चुन्नी, नखों-होंटों पर लाली, बालों के कुण्डल बने हुए, सारी सज्जा क्रिकेट मैच के अनुकूल बना कर आई थी, और जबान पर भी क्रिकेट की ही चर्चा थी। मैंने कहा :

"आप तो रमेश से भी ज्यादा क्रिकेट की जानकारी रखती हैं।"

वह मुस्कराई, कहने लगी :

"अगर यह कभी क्रिकेट खेलने दिल्ली आवें तो हमारा सारा शहर इनका खेल देखने भागता हुआ आएगा। सारे शहर में इन्हें कोई आउट नहीं करा सकता।"

फिर इसके बाद जो स्वैटर बुन रही थी, उसके अधबुने बाजू को अपने पति के कन्धों से जोड़ कर, सलाई मुंह में रखे, निःसंकोच मापने लगी :

"क्यों जी, दो सलाइयां और चढ़ा दूं तो ठीक रहेगा ? कल मैं यह स्वैटर पूरा करके तुम्हें पहना दूंगी। मेरा इकरार था न कि मैच खत्म होने से पहले इसे तय्यार कर दूंगी ?"

"अच्छा, अब थोड़ी देर मुंह बन्द करके मैच देखो, पुष्पा।"

इस पर स्त्री ने अपनी बड़ी बड़ी विश्वासभरी आंखों से अपने पति के चेहरे को देखा, फिर मुस्कराई और कहने लगी :

"तुमने मुझे पहले क्यों नहीं कहा ? मुझ में यही तो बुरी आदत है। मैं बोलना शुरू कर दूं तो बोलती ही जाती हूं, चुप नहीं रह सकती।"

फिर मेरी तरफ देख कर खिसियाने लगी, उसका चेहरा लाल हो उठा और वह चुप हो गई।

कई लोगों की वेष-भूषा उनके चरित्र के अनुकूल नहीं बैठती। उन की वेषभूषा के नीचे असल व्यक्ति छटपटाता हुआ नजर आता रहता है। उस स्त्री पर भी उसकी वेषभूषा ठीक न बैठ पाई थी। जब भी वह हर वाक्य के बाद एक शंकित आग्रह से अपने पति के चेहरे की ओर देखती तो उसका घरेलूपन और सादगी उसकी आंखों में से झांकने लगती।

पर मेरे मित्र की सज्जा सचमुच उसके अनुकूल थी ; रंग काला, दान्त पान-मदिरा-तम्बाकू से बेतरह काले, हाथों की उंगलियों पर सिगरेट का पीलापन, आंखों में लोलुपता और चालाकी। कद का लम्बा था पर शरीर का शिथिल हो चुका था। उसका एक एक हंसी, एक-एक वाक्य के तीन-तीन अर्थ निकलते। कई घाट का पानी पी चुका था।

"हैं जी, देखिये, आप को भी ऐसी ही सफेद जर्सी बुन दूं जैसी कि उस लड़के ने पहन रखी है ?"

उस से न रहा गया जब एक आदमी हमारी कतार के सामने से गुजरता हुआ, अपनी कुर्सी की ओर जाने लगा। फिर मुझे देखकर मुस्कराई :

"इनके पास एक भी सफेद जर्सी नहीं है।"

इतने में वह हड़बड़ा के उठ बैठी :

"हाय, मैं भी कैसी पागल हूं। मुझे तो भूल ही गया था। मैं ने तो अभी तक प्लेटें ही नहीं निकालीं।"

और उठकर, कुर्सियों के नीचे पड़ा हुआ टिफनकैरियर निकाल लाई, और उसे खोल कर एक-एक चीज कुर्सी पर रखने लगी।

"अभी लञ्च का वक्त हो जाएगा, और फिर नल पर इतनी भीड़ हो जाती है कि पानी ही नहीं मिलता।"

फिर उन्हीं कदमों, हाथ में एक थर्मस बोतल उठाए, बाहिर नल पर से पानी लेने दौड़ी चली गई। उसके चले जाने पर मैं अपने मित्र के साथ वाली कुर्सी पर जा बैठा :

"पुष्पा कैसी बदल गई है" मैं ने कहा : "खूब हाथ पर रखा हुआ है दोस्त, हर वक्त तेरे नाम की माला जपती रहती है।"

वह मेरे मुंह की ओर देखने लगा, और थोड़ी देर बाद मुस्कराया :

"हमारे घर में भी एक क्रिकेट मैच चल रहा है, देखें कौन जीतता है।"

"क्या मतलब ?"

वह मेरी ओर झुक कर बोला :

"यह सब रंग-ढंग जो तुम देखते हो, मछली पकड़ने की बेट हैं।"

अब की बार मैं उसके मुंह की ओर देखने लगा।

"तुम समझते हो यह रंग-रोगन लगाना उसे मैं सिखा रहा हूं ? हर दूसरे महीने यह कोई नया पाठ पढ़ आती है। कभी हारमोनियम बजा रही है, और कभी बाल कटवाए जा रहे हैं, और कभी ताश खेलना सीख रही है।"

फिर हंसते हुए, अपने काले दान्तों को दिखाते हुए, सिर टेढ़ा करके बोला :

"इस तरह यह हमें पकड़ ले तो फिर कहना ही क्या है। अपने को

तो आजादी चाहिये। खेल ले जो दाव-पेच खेलना चाहती है, मगर एक दाव मैं भी जानता हूँ।"

मैं उसके चेहरे की ओर देख रहा था। वह थोड़ी देर तक हवा में देखता हुआ सिगरेट के कश लगाता रहा, फिर मेरी ओर झुक कर धीरे से बोला :

"तुम्हारे कितने बच्चे हैं ?"

"एक लड़की है, क्यों ?"

"तुम ज्यादह औलाद पसन्द नहीं करते ?"

"करता हूँ, मगर पैसे कहाँ से लाऊं ? तुम्हारे कितने बच्चे हैं ?"

"तीन। दो लड़कियाँ, एक लड़का।"

फिर अपने आप, कुछ सोचते हुए, जैसे अपने आप से बातें कर रहा हो, बोला :

"एक बच्चे का मतलब है साल भर का आराम और छुट्टी। अब महीने दो महीने में यह मायके चली जाएगी। और इसके मायके कलकत्ते में हैं। हम साल भर प्यार की चिट्ठियाँ लिखते रहेंगे।"

मैं अवाक्, उस के मुंह की ओर देखने लगा :

"मगर तुम्हारे तो पहले ही तीन बच्चे हैं, और पाँच वर्ष भी तुम्हारी शादी को नहीं हुए।"

वह फिर हंसने लगा :

"इसके मायके अमीर हैं, सब पल जाएंगे। और औरतों की गोद भरी ही रहनी चाहिये।"

फिर एक नया सिगरेट सुलगा कर, टाँग पर टाँग रखे, आकाश को देखता हुआ, बोला :

"देखो तो मुझे पुष्पा पकड़े, कैसे पकड़ेगी ?"

पुष्पा पानी लेकर लौटी। खाना परोसा गया। पुष्पा ने हम दोनों

को एक-एक प्लेट पकड़ा दी, और फिर आप एक तरफ बैठकर खुद खाना खाने लगी।

इतने में रमेश के दो तीन दोस्त, एक जवान स्त्री, दो पुरुष, कतारों को लांघते हुए, अपनी सीटों की ओर जाने लगे। रमेश के पास से गुजरे, तो रमेश ने हंस कर उन्हें सलाम किया। दोनों तरफ से "हैलो, हैलो" हुई। उस स्त्री की ओर लोगों की नजरें घूम गई थीं। उड़ता हुआ फूलदार साड़ी का पल्ला, उड़ते हुए बाल, काला चश्मा, खुशबू बखेरती हुई आई और खुशबू बखेरती हुई पिछली लाइन में जाकर बैठ गई। पुष्पा के चेहरे पर एक छाया सी दौड़ गई, और उसका चेहरा जर्द पड़ने लगा। पर मुझे देख कर वह धीरे-धीरे फिर मुस्कराने लगी।

इतने में पिछली कतार में से एक केले का छिलका उड़ता हुआ आया और रमेश के सिर पर जा लगा, और साथ ही ऊंचा-ऊंचा हंसने की आवाज आई। रमेश ने घूम कर देखा, और हंसता हुआ उठ कर, पिछली कतार में जाकर बैठ गया।

"रमेश अब भी वही रमेश है, बदला रत्ती भर भी नहीं।"

पुष्पा पहले तो चुप रही, फिर हंस कर बोली :

"इन्हें लड़कियाँ बहुत चाहती हैं। हमारी क्लब में भी अगर यह एक रोज नहीं जाएं तो वह शिकायत करने लग जाती हैं। इनके पास लड़कियों को मोह लेने का कोई जादू है।"

मुझे यह वाक्य सुन कर पुष्पा पर क्रोध आ गया। मुझे और तो कुछ न सूझा, बिना सोचे मैंने कह डाला :

"सुना है आप मायके जा रही हैं?"

'मायके? नहीं तो। आपको किस ने कहा?"

'रमेश कहता था कि कुछ दिन तक शायद आप मायके चली जाएं।"

वह सहसा चुप हो गई। मुंह पर से बढ़ती वेदना की छाया उससे हटाए न हट पाई, उसके होंट क्षण भर के लिये कांप गये, मगर उसने आंखों को तर होने से रोक लिया। धीमी सी आवाज में बोली :

"शायद इन्हें बाहिर दौरे पर जाना हो, इस लिये मुमकिन है मैं मायके चली जाऊं। यह बाहिर चले जायेंगे तो मैं घर पर अकेली क्या करूंगी ?"

और फिर नजर नीची करके अपनी कांपती उंगलियों से स्वैटर बुनने लगी। मैच फिर शुरू हो गया था। और पीछे से हंसी-मजाक की आवाजें बराबर आ रही थीं।

मुर्गी की कीमत

पैसे गिनना अहमदू की आदत बन गया था। अपनी सारी सोच हाथ में पैसे रखकर किया करता। उन्हें बार-बार मसल कर ही किसी निश्चय पर पहुँच पाता था।

आज सुबह खिल्लनमर्ग पर सर्दियों की पहली बर्फ का छींटा दिखाई दे गया। गोया गुलमर्ग में 'सीजन' के आखिरी दिन आन पहुँचे। अहमदू का दिल घर जाने के लिए तड़प उठा। पाँच महीनों से लगातार बोझ उठा रहा था, कोई सड़क या पगडण्डी बाकी न रही होगी जिस पर उसके पसीने की बूंदें न गिरी हों। लेकिन उसके बावजूद वह कुल बारह आने का सरमाया जमा कर पाया था। और इन बारह आनों में छः आने उस बोझ के थे जो अभी-अभी वह टंगमर्ग के लारियों के अड्डे तक उठा कर लाया था। ...बारह आने...इन्हीं को वह सड़क से कुछ दूर, एक सूखे हुए नाले में खेलती हुई एक सफेद मुर्गी को देखता हुआ, मसल-मसल कर गिन रहा था।

पाँच महीने हुए, घर से रुखसत होते वक्त बीबी ने कहा था : 'पैसे जाया नहीं करना। कम से कम इतने जरूर जमा करके ले आना कि मैं नया फिरन सिलवा सकूं। हो सके तो कपड़ा ही खरीद कर ले आना। बाहिर सुना है मिल जाता है, सिरीनगर में नहीं मिलता।' यह भी झूठ नहीं कि अहमदू ने किफायत करने में कोई कसर नहीं छोड़ी। फिर भी वह केवल बारह ही आने जमा कर सका।...नहीं, अब वह घर ही जायेगा। अब और हड्डियाँ चटखाने का कोई फायदा नहीं।...

खैर, घर जाने का फैसला तो वह कर ही चुका था। अब एक और समस्या उसे पैसे मसलने पर मजबूर कर रही थी। और उसका सम्बन्ध घर से नहीं, उस मुर्गी से था जो सूखी नदी के पाट में, गोल-गोल पत्थरों पर फिसलती हुई, उसका ध्यान अपनी तरफ आकर्षित कर रही थी।

अहमदू सोच रहा था, क्यों न वह उस मुर्गी को खरीद ले ! खाली हाथ घर जाना अच्छा नहीं। और कुछ नहीं तो नन्हा नूरू ही उससे खेल-खेलकर खुश होता रहेगा। कितनी प्यारी है। कभी न कभी अण्डे भी देगी। जरूरत पड़ने पर बेची भी जा सकती है, खाई भी जा सकती है।

लेकिन अगर खरीद ले तो लारी पर नहीं बैठ सकेगा। पच्चीस मील का सफर उसे पैदल करना होगा। इसी में रात हो जायेगी। पाँव छिल जायेंगे। घर लौटने की सारी उमंगें बैठ जायेंगी।

नाले के पार, दूर से एक लड़की भागती हुई चली आई और मुर्गी को उठाने लगी। यह इस मुर्गी की मालकिन थी। अहमदू ने बैठे-बैठे पुकारा 'मुर्गी बेचोगी ?'

लड़की ने पहले कोई जवाब नहीं दिया। हिरन की तरह पत्थरों को फलांगती हुई करीब चली आई और मुर्गी को चट से पकड़ लिया। उसे छाती से लगाकर अहमदू के सामने खड़ी हो गई—

'तुम खरीदोगे ?'

'हाँ।'

लड़की की उम्र दस बारह बरस की होगी। फिर भी वह मुर्गियों की खरीद-फरोख्त का ढंग अच्छी तरह जानती थी। गुलमर्ग में अण्डे मुर्गी बेचना उसके माँ-बाप का पेशा था। बोली—'छः आने होंगे।'

'वाह जी ! पाव भर के चूजे के लिए छः आने।' अहमदू ने कुछ लापरवाही दिखाते हुए जवाब दिया।

'तुम्हें देता ही कौन है !' लड़की ने हंसकर कहा।

अहमदू उठ खड़ा हुआ। लोई कन्धे पर रखी और चलने लगा। लेकिन किसी आकस्मिक आवेश में फिर लोई उतार कर जमीन पर रख दी, और छः आने लड़की की हथेली में गिन दिये। लड़की ने अपनी बड़ी-बड़ी आंखों से अहमदू को देखा और कहा—

'घर जा रहे हो ?'

यह सवाल अहमदू को बड़ा अच्छा लगा। मुर्गी को अपने हाथों में लेते हुए उसने खुशी से कहा—

'हां।'

'कहां?'

'सिरीनगर।'

लड़की पैसे छनकाती हुई भाग गई। अहमदू सड़क पर आ गया। अब लारियों के अड्डे की तरफ जाना फजूल था। पैदल ही जाना पड़ेगा। और जितनी जल्दी सफर शुरू कर दिया जाय, उतना अच्छा।

तीन दिन की लगातार बारिश के बाद आज आसमान साफ हुआ था, और उसकी स्वच्छ नीलिमा के नीचे काश्मीर की वादी का एक-एक रंग निखर आया था। दूर से सिरीनगर शहर के मकान तक नजर आ रहे थे। इन्हीं में अहमदू का घर भी था, जिस में उसकी बीस वर्ष की पत्नी, बीसियों प्रकार के रिश्तों, सख्तियों और रख रखाव में अपनी जवानी को पीसती हुई, बड़े सब्र से उसकी राह देख रही थी। अहमदू का जी चाहा कि बच्ची को फिर बुलाये और उससे बातें करे। मगर वह दूर जा चुकी थी। अपनी कुड़कुड़ाती हुई मुर्गी के नर्म बदन पर हाथ फेर-फेरकर अपनी कल्पना ही से बातें करता हुआ वह नंगे पाँव सड़क पर चलने लगा।

ऊँचे-ऊँचे सफेदे के पेड़ों की दो कतारों के दर्मियान श्रीनगर वाली सड़क, पहले कुछ दूर तक बल खाती हुई, और बाद में सीधी चली जाती है। अहमदू उस पर दोपहर तक चलता गया; कंधे झुके हुए, कुली की विशेष चाल, जैसे कोई अदृश्य बोझ हर वक्त उठाये हुए हो; बायाँ हाथ कन्धे पर पड़ी लोई पर रखे हुए और दायें हाथ में मुर्गी को उठाये हुए जो चकित सी, बिटक बिटक कर दाएं-बाएं देख रही थी। अपने अंगूठे के नीचे अहमदू उसके दिल की धड़कन महसूस कर रहा था, जिस से उसे अपने जीवन के सुखद क्षणों की याद आ जाती थी।

दोपहर होते-होते अहमदू ने कोई बारह मील तय कर लिये। पहाड़ की ठण्डी हवा की जगह अब मैदान की गरम हवा चलने लगी थी जो बेद के दरख्तों की कड़वी बू से लदी हुई थी। अहमदू ने चाहा किसी गाँव में पहुँचकर चॉ पी ले और कुछ खा ले क्योंकि भूख जोरों से लग रही थी और पाँव थक गये थे। लेकिन दूसरी तरफ जल्दी घर पहुँचने के लिए जी मचल रहा था। वह सोच में पड़ गया। बचे हुए छः आने फटे हुए कोट की जेब से निकाल कर वह फिर मसलने लगा। क्या छः आने में बाकी सफर लारी में बैठकर नहीं हो सकता? आधे के करीब फासला तो वह काट ही चुका है। शायद कोई बिठा ले। सोचते-सोचते वह दो-एक मील और निकल गया। लारियाँ गुजरतीं लेकिन वह हाथ दिखाने की हिम्मत न कर पाता। कौन गालियाँ सुने। आखिर इन पाँच महीनों में कोई कम गालियाँ नहीं सुनी थीं। लेकिन भूख और थकावट ने अहमदू को बाध्य कर दिया कि वह रुक-रुक कर बसों को ठहरने का इशारा करे। अक्सर उसके मुँह पर धूल के झाँपड़ मारकर निकल गयीं। जो रुकीं, उन्होंने उसे अपमानित किया; क्योंकि अभी तक वह उस सीमा के अन्दर दाखिल नहीं हुआ था जहाँ से श्रीनगर तक छः आने में सफर किया जा सकता है। जब उस सीमा में वह दाखिल हुआ तो सूरज अस्ताचल में पहुंच चुका था। एक लारी रुकी। क्लीनर ने छः आने पेशगी ले लिये, और पिछले हिस्से में अहमदू को भी ठोंस दिया। यह उसके लिये बहिश्त में पहुँच जाने के बराबर था। दो झकोले लगते ही वह बैठा-बैठा सो गया।

जब उसकी नींद टूटी तो लारी खड़ी थी और वातावरण धूल से सटा हुआ था। इस धूल में श्रीनगर की सुपरिचित गन्ध थी। अहमदू ने खुशी से आंखें मलते हुए लोई संभाली, मुर्गी को अपने पसीने से तर दाएं हाथ से बायें हाथ में लिया और उतरने की तय्यारी करने लगा। लेकिन दूसरे मुसाफिर क्यों नहीं उतर रहे थे? अहमदू ने बाहर झाँक कर देखा। लारी एक चुङ्गीघर के सामने खड़ी थी। दरिया के किनारे एक

छोटी-सी इमारत, उसके बरामदे में बड़ी-सी पुरानी मेज, उसपर बहुत से खाकी कागज और उन पर आंखें जमाये हुए दो दुबले-दुबले बाबू। उन्हें देखते ही अहमदू का माथा ठनका। यहाँ हर चीज पर महसूल देना पड़ता है, तो मुर्गी पर भी देना होगा। उसकी जेब में कच्ची कौड़ी भी न थी। सहसा उसे ज्ञात हुआ कि वह एक नयी मुश्किल में फंस गया है। उसका घर यहाँ से करीब ही था, किसी डुंगे या नाव में दरया पार करके वह पाँच मिनट में घर पहुँच सकता था, लेकिन चुङ्गी वालों से नजर बचाकर निकल जाना असम्भव है।...या अल्लाह!

उसने देखा कि बाबुओं के सामने पैदल चल कर आये हुए देहातियों की कतार लगी है। किसी के हाथ में सब्जी है, किसी के पास फल या अण्डे। इनके पीछे दो मुर्गियाँ बगल में दबाये एक बुढ़िया भी खड़ी है और दबे-दबे चपरासी की मिन्नत-समाजत कर रही है। अहमदू को उसकी आवाज भी कुछ-कुछ सुनाई दी। वह कह रही थी: 'मैं इन्हें अपने घर से लायी हूँ। उस सामने वाले डुंगे में जाऊंगी। वह भी मेरा अपना है, हम लोग लकड़ी ढोते हैं। आज ही रात बारामूला रवाना होंगे। खाने-पीने का सामान घर से न ले जायें तो और कहाँ से ले जायें। मुझे मालूम होता कि तुम रोकोगे बेटा, तो मैं इधर से आती ही क्यों। पहले तो कभी किसी ने नहीं रोका....'

अहमदू का दिल बैठने लगा...वह बिल्कुल बदहवास हो गया। उसे और तो कुछ न सूझा, उसने मुर्गी को अपनी लोई में छुपा लिया।

मेज के पीछे बाबू चुप-चाप बैठे थे। एक पीली पगड़ी बांधे हुए करीब पैंतीस वर्ष का काश्मीरी पण्डित था। उसके चेहरे से जाहिर था कि उसका हाजमा और ईमान दोनों कमजोर हैं। उसके सामने मेज पर एक सन्दूकचा पड़ा हुआ था जिसमें चुंगी के पैसे जमा किये जाते थे। दूसरा बाबू आँखों पर सस्ता-सा चश्मा लगाये, कान के पीछे कलम अटकाये हुए, शून्य में देख रहा था। उसके सामने एक खुला हुआ रजिस्टर पड़ा हुआ था, जिसमें चुङ्गी का हिसाब दर्ज होता था।

अहमदू ने फिर बुढ़िया की तरफ देखा। वह इस अपराजित ढंग से हाथ और सिर हिला-हिलाकर बातें कर रही थी कि जैसे महसूल माफ करवा के छोड़ेगी। लेकिन उसी क्षण चपरासी ने बुढ़िया को जोर से धक्का दिया। दोनों मुर्गियाँ जोर से कुड़कुड़ायीं। बुढ़िया अब खामोश हो गई। अपने दुपट्टे के छोर से उसने, गाँठ खोलकर, कुछ पैसे निकाले और मेज पर रख दिये। फिर आस्तीन से आंखें पोंछती हुई अपनी राह चली गयी।

अहमदू का चेहरा तमतमा गया और शरीर सुन्न हो गया ; अहमदू को ऐसा लगा जैसे संसार की गति एकदम रुक गई है ; जैसे यह लारी हमेशा से वहाँ खड़ी है और खड़ी रहेगी। उसे हर एक चीज़ निरुद्ध, गतिहीन और भयानक नजर आने लगी। अब उसे इस मुर्गी से कोई आकर्षण नहीं था। उसके बदन की नर्मी अब उसे किसी के बदन की नर्मी की याद नहीं दिलाती थी। उसका बिटक-बिटक कर देखना, नन्हें नूरू की तरह, उसे बिल्कुल ही भूल चुका था। और आखिर जब उसने खाकी वर्दी वाले चपरासी को अपनी तरफ आते देखा तो उसे फिर इच्छा हुई कि लपककर गाड़ी से उतर जाये और दरिया की राह ले। लेकिन पाँव में जैसे सिक्का जम गया था वह अपनी जगह से हिल न सका।

चपरासी अपनी छड़ी घुमाता हुआ आया। वर्दी के नीचे से उसकी मैली और फटी हुई कमीज जगह-जगह से झाँक रही थी ; जूते भी फटे हुए थे जिस कारण वह रुक-रुक कर कदम उठाता था। लेकिन अहमदू की नजरों में वह एक साधारण इन्सान नहीं बल्कि एक विशालकाय दैत्य था। अहमदू के हाथ कांप रहे थे, और इन्हें वह लोई के अन्दर डालकर बार-बार अपनी तसल्ली करता था कि कहीं मुर्गी के कुड़कुड़ाने की सम्भावना तो नहीं।

चपरासी ने लापरवाही से अपनी छड़ी सीटों के नीचे पड़े हुए सामान पर आजमायी। वह गरीब तबके के मुसाफिरों की आदत से वाकिफ था। पूछने पर वह कभी नहीं बताते कि उनके पास कोई महसूल की चीज है। डाँट-डपट सुन लेंगे, मारपीट तक सह लेंगे, मगर धोखा करने से बाज न आयेंगे। इनसे झिक-झिक तो महज रौब दिखाने के लिए करनी पड़ती है, हासिल कुछ भी नहीं होता। और फिर अभी-अभी एक जगह से अच्छी आमदनी हो गयी थी आज ज्यादह झक मारने की जरूरत नहीं। उसने लारी का दरवाजा बन्द किया और वापिस चला गया। कुछ क्षण बाद लारी चल दी।

अहमदू अवाक् रह गया। इस तरह साफ बच जाने की उसे आशा न थी। जिस क्षण चपरासी ने दरवाजा बन्द किया था उसी क्षण मुर्गी एक बार कुड़कुड़ाई थी। और अहमदू ने समझा था कि अपने सर्वनाश की घड़ी आ पहुँची। उसके मन में सन्तोष का सैलाब-सा उमड़ आया।

लारी चलने लगी। लारी में गति आते ही वातावरण फिर जीवित हो उठा। जब तक लारी खड़ी थी मुसाफिर इस तरह चुप थे जैसे उनके अपने शरीर ठण्डे पड़ गये हों, अब वह बोलने लगे। बाहिर सड़क पर भी रौनक थी। दुकानों की बत्तियाँ जल रही थीं। और कहीं-कहीं औरतों के गाने की आवाज भी सुनाई दे जाती थी।

अहमदू ने लोई का पल्ला ढीला किया और बायाँ हाथ खींचकर बाहर निकाला। मुर्गी उसकी हथेली में चुपचाप जैसे सोई हुई थी। आखें बन्द, सिर हाथ के अँगूठे पर टेढ़ा होकर गिरा हुआ। बाहिर की ताजा हवा में आने पर भी उसके नन्हें गुदगुदे शरीर में कोई हरकत पैदा न हुई। बर्फ के से सफेद पंख ढीले हो रहे थे। उसे देखकर भी अहमदू को यह ज्ञात नहीं हुआ कि वह कुड़कुड़ाहट दम तोड़ते समय

मुर्गी की आखिरी फरियाद थी । वह अपने हाथों से उसे कत्ल कर चुका था ।

एकाएक अहमदू की आंखों से टपटप आँसू गिरने लगे और वह सिसकियाँ भरने लगा । देखते-देखते उसकी सिसकियाँ तेज होती गयीं और वह बिलख-बिलख कर रोने लगा ।

मुसाफिरों की समझ में नहीं आया कि इस जाहिल काश्मीरी हतो को क्या हो गया है । वह क्यों रो रहा है और बड़बड़ाकर क्या कह रहा है । न ही उन्हें जानने की उत्सुकता थी । क्लीनर ने रस्सी खींचकर गाड़ी रुकवा ली, और अहमदू को धक्के देकर नीचे उतार दिया ।

सड़क के इस हिस्से पर घुप अन्धेरा था । लारी के चले जाने पर अहमदू स्तब्ध खड़ा रहा, फिर धीरे-धीरे एक पुल की ओर जाने लगा, जो सड़क के किनारे एक नाले पर बना हुआ था । थोड़ी देर तक वहाँ खड़ा रहने के बाद उसने वह परों को सफेद गोल सी गेंद पुल के नीचे फैंक दी, और फिर घर की ओर जाने लगा । अब न उसके पास पैसे थे, और न आगे के लिये कोई निश्चय करना बाकी था ।

नीली आंखें

इस सड़क पर आने-जाने वालों का तांता केवल गहरी रात गये थमता है। कहीं-कहीं पर राह जाते लोग कुतूहलवश इकट्ठे भी हो जाते हैं और छोटी-सी भीड़ बन जाती है; लेकिन घड़ी भर बाद यह भीड़ रेशमी कपड़े की हल्की-सी गांठ की तरह खुल भी जाती है, और आमदोरफ्त का तांता उसी तरह कायम रहता है। इस क्षणिक जन-समूह की अपने में कोई विशेषता या अभिप्राय नहीं, लेकिन इसकी भी एक हल्की-सी ठोकर किसी को बरसों के लिए अचेत कर सकती है, कौन मानेगा?

इसी सड़क के किनारे, सायंकाल के बढ़ते अन्धेरे में एक अस्पताल के सामने दो व्यक्ति खड़े रो रहे थे। एक बीस-बाईस वर्ष का लड़का और दूसरी सत्तरह-अठारह वर्ष की लड़की। ऐसा जान पड़ता था जैसे एक दूसरे से जुदा हो रहे हों। लड़की बार-बार आँसू पोंछती और पास ही पीपल के पेड़ की ओट में सिमटी जाती; लड़का जमीन पर बैठा हुआ बड़े आग्रह से उसे रुक जाने को कह रहा था:

'देख राजो, दो दिन और माँग खा, फिर मैं ठीक हो जाऊँगा, खुदा कसम, मुझे छोड़कर मत जा।'

'मैं कहाँ से माँगूँ? मुझे देता कौन है?'

'तो यूँ छोड़ कर चली जायेगी? सरम नहीं आयेगी तुझे? मैं मर रहा हूँ, और तू भागे जा रही है।'

'तू अस्पताल में मजे से है। तुझे तो वहाँ बिस्तर भी मिलता है, मैं बाहर सड़क पर क्या करूँ?' और फिर लड़की की आंखें आँसुओं से डबडबा आयीं।

लड़का हल्के नीले रंग की बीमारों की वर्दी पहने हुए था, चेहरे का रंग जर्द और शरीर शिथिल, खड़ा तक न हो सकता था। जिस लड़की को वह बार-बार जाने से रोक रहा था, वह भी कोई सुन्दरी न थी, साधारण ग्रामीण लड़की थी। उसका भी चेहरा पीला और रो-रोकर थका हुआ, कपड़े मैले और कहीं-कहीं पर से फटे हुए, सिर के बाल रूखे और बिखरे हुए थे। हाँ, आंखें उसकी नीली थीं, स्वच्छ आकाश की-सी नीली जो किसी-किसी वक्त आँसू पोंछने के बाद धुली हुई, आकर्षक जान पड़तीं।

पास खड़े हुए लोग इस जुदाई का तमाशा देख रहे थे। ज्यों-ज्यों भीड़ बढ़ती जाती, लड़की सहमी हुई पेड़ की ओट में छिपती जाती। लड़का इन तमाशाइयों के सहारे लड़की को रोक लेना चाहता था। पास खड़े हुए एक बाबू को हाथ जोड़ कर कहने लगा, 'बाबू साहब, इसे समझाओ, अपना देश होता तो दूसरी बात थी, परदेस में मुझे यूँ छोड़े जा रही है, मैं इसे कहाँ से ढूँढूंगा ?'

'तू इसे अस्पताल में क्यों नहीं रखता ?' बाबू ने पूछा।

'वहीं पर थी बाबू, पर साहब ने निकाल दिया, वहाँ सिरफ बीमार को रहने देते हैं।'

अब के बाबू ने लड़की को कहा—अरी ठीक ही तो कहता है, दो दिन और माँग खा, जब यह तन्दरुस्त हो जाये तो काम करने लगेगा।

'यह क्या काम करेगा, घर से ले आया और यहाँ आकर बीमार पड़ गया। मैं कहाँ से माँग कर इसे खिलाऊँ ?'

लड़का व्याकुलता से बोल उठा—अरी मैं औरत के हाथ का माँगा हुआ खाऊंगा ? देखो साहब, यह जोड़ा मैंने इसे सिलवा कर दिया है।

'तो यह जाना कहाँ चाहती है ?' बाबू ने पूछा।

'मैं क्या जानूं साहब, कहाँ जाना चाहती है।'

लड़की चुप थी।

'अरी, बोलती क्यों नहीं, कहाँ जायेगी ?'

अबकी रुंधी हुई आवाज में लड़की ने जवाब दिया—मुझे यहाँ डर लगता है। और फूट-फूट कर रोने लगी।

इस लड़की का रोना एक भूखे बच्चे के रोने की तरह सरल जान पड़ता था, लेकिन अचम्भे की बात थी कि जिस लड़की को सड़क पर डर लगता है वह अपने एक मात्र आश्रय को छोड़ कर कहाँ जाना चाहती है ?

किसी साहब का अधेड़ उमर का बहरा भी, अपने लड़के के साथ चलते-चलते रुक गया था। पहले तो वार्तालाप सुनता रहा, फिर अपने लड़के से पूछा—क्यों मंगू, यह रातवाली लड़की तो नहीं क्या ? और जब मंगू ने इसके उत्तर में 'दिक्खे तो वही' जवाब दिया, तो बहरा भीड़ के दायरे के अन्दर आ गया, और बीमार को सम्बोधित करके कहने लगा, 'अरे, यह तेरी औरत है ? औरत को यूँ फैंक जाते हैं ? जानता है, रात-भर क्या बीती इस पे ? देखो बाबू, यह लड़की बच गई सो हम हैरान हैं। दो शराबी इसके पीछे पड़ गये। कभी यह रोती-चिल्लाती एक गली में जा छिपती, कभी दूसरी में। दस बार हमारी नींद टूटी होगी रात को।'

इस पर भीड़ में से एक मनचले ने आवाज कसी, 'अरे, तू ने ही तो शराब नहीं पी रखी थी रात को ? खूब पहचाना तुमने ?' कई लोग हँसने लगे। बहरा थोड़ी देर हत्-बुद्धि भीड़ को देखता रहा, फिर चुपचाप भीड़ में से निकल कर चला गया।

जो थोड़ी-सी सहानुभूति लड़की के प्रति बन पाई थी, वह इस एक वाक्य ने छिन्न कर दी। लड़की इस पेड़ के नीचे दूसरी रात न बिताना चाहती थी। व्याकुल और डरी हुई, एक पागल की तरह यहाँ से भाग जाना चाहती थी।

भीड़ के लिए वार्तालाप बोझल और नीरस हो रहा था। इस एक वाक्य से कइयों के दिल हल्के हुए। एक साहब सिगरेट का कश लगाकर चुटकी बजाते हुए बोले—यह सब बकवास है, यह इसकी औरत नहीं, साला कहीं से भगा लाया है, अब तंग आ गया है और फैंकना चाहता है।

'अरे वह तो खुद जाना चाहती है, यह तो उसे रोक रहा है।' किसी ने जवाब दिया।

'तो इसे कोई और मिल गया होगा जो जाना चाहती है। साले शहर को गन्दा कर रहे हैं।' और सिगरेट का धुआँ छोड़ते हुए इधर-उधर देखने लगे।

एक दूसरे साहब ने अपना संशय मिटाना चाहा—

'क्यों री, यह तेरा खाविन्द है?'

लड़की, डरी हुई, चुप खड़ी रही।

'देखा साहब, मैंने कहा नहीं था। जो खाविन्द होता तो बोलती नहीं?'

लोगों का कुतूहल बढ़ने लगा। लड़की से फिर पूछा गया—

'तो इसके साथ भाग कर आयी हो? शादी नहीं की?'

पीपल की ओट में से, सकुचाते हुए लड़की ने धीरे से जवाब दिया:

'शादी करी है, गली में फकीर ने करवायी थी।'

तमाशाइयों में से कई खिल-खिला कर हंसे, 'यह बाबू ठीक कहता है, यह शादी इसी तरह की है।'

लोगों को फिकरेबाजी का अच्छा अवसर मिल गया था, लड़की पर तरह-तरह के आक्षेप होने लगे, जैसे किसी पक्षी के पंख नुचने लगें। बीमार जमीन पर बैठा, एक हाथ से पेट दबाता हुआ, बड़ी दीनता से, कभी एक की तरफ, कभी दूसरे की तरफ देख रहा था।

'टका जेब में नहीं और आप इश्क करने निकले हैं!' एक ने कहा।

'लड़की जवान है, इसी लिए साला इसे जाने नहीं देता !'

'बीमार है तो भी—'

फिर कई लोग हँसने लगे।

अब एक दाढ़ीवाले सज्जन भी इस भीड़ में खड़े तमाशा देख रहे थे। सिर पर तुर्रेवाली सफेद पगड़ी, काला कोट, गहरी सिलवटोंवाली सलवार, मौका देखकर सीधे लड़की के पास जा पहुँचे और अपने कामातुर हाथों से उसकी पीठ, कन्धों और बालों को सहलाने लगे और उसे आश्वासन देने लगे। लड़के ने देखा तो उसका दिल बैठ गया ; लेकिन सिवाय व्याकुल याचना के और क्या कर सकता था।

दो फौजी भी चलते-चलते आन खड़े हुए थे। एक ने दूसरे को कहा—

'चीज अच्छी है, करूँ सिफारश तेरी ? सस्ते में काम हो जायेगा। जालिम की आंखें हैं कि बस.....'

भीड़ बढ़ने लगी।

यहाँ हर राहजाते के कुतूहल के लिए सामग्री थी, मनोरंजक, कामोत्तेजक ! एक लड़की, घर छोड़कर आयी हुई, निराश्रय और फिर गरीब, जो कहोगे, सुन लेगी, जो सुनाओगे, सह लेगी। फिकरों की इस बौछार के सामने लड़की का चेहरा जर्द पड़ने लगा, और नीली आंखें त्रस्त हो उठी। बार-बार सिर पर का आंचल सँभालती हुई, पीपल के सहारे संज्ञाहीन-सी खड़ी थी। और इन्हीं फिकरों में बीमार की क्षीण याचना बार-बार सुनने में आती :

'देख राजो मत जा।...मैं जरूर अच्छा हो जाऊँगा।··· नहीं हुआ तो देस लौट चलेंगे।··· अरी, देखती नहीं, मैं किस हालत में हूँ ? मेरे पास से मत जा···' और बार-बार रोने लगता।

एक हिन्दुत्व-प्रेमी भी इस भीड़ में खड़े थे। आगे बढ़कर बड़ी गम्भीरता से पूछने लगे—अरे, यह लड़का हिन्दू है कि मुसलमान ?'

एक दूसरे हिन्दू सज्जन ने जवाब दिया : 'कभी हिन्दू भी लड़कियाँ भगाकर लाते हैं, जरूर मुसलमान होगा कोई।'

एक तीसरे ने कहा : 'इसके गले में तावीज नहीं देखते ? मुसलमान ही तो है।'

लेकिन उन्हें फिर शक गुजरा, 'तो फिर यह साला मुसलमान, किसी हिन्दू लड़की को तो भगाकर नहीं ले आया ?'

लेकिन लड़की के गले में भी एक तावीज बंधा हुआ था जो फकीर द्वारा कराई गई शादी के वक्त, चिर सुहाग की कामना करते हुए उसने फकीर से लेकर पहना था। उसका काला धागा अब भी लड़की की गर्दन पर दीख रहा था, सो बात आगे नहीं बढ़ पाई।

धीरे-धीरे कई एक बातों का पता चला।

केवल दस रोज पहले ही यह शादी हुई थी, जब वह दोनों मजदूरी की तलाश में अपना गाँव छोड़कर यहाँ भाग आये थे। दोनों एक दूसरे के प्रेम में उलझे हुए, बेसुध चले आये। तब इसकी ओर कोई आंख उठाकर भी देखता तो लड़का अपनी जान पर खेल जाता। पहले तो हफ्ता भर मजदूरी की तलाशमें इस नये शहरकी खाक छानते रहे। जब मजदूरी मिली तो एक रात लड़का पेट की दर्द से चीख उठा, और रात-भर छटपटाता रहा। राजो किंकर्तव्य-विमूढ़ उसके सिरहाने बैठी हाय-हाय करती रही। सुबह कहीं दर्द शान्त हुआ और लड़का सो गया। पर तीसरे दिन फिर दर्द का दौरा हुआ, अबकी आधा दिन और आधी रात तड़पते बीती। राजो काँप उठी। अजनबी शहर में एक-एक क्षण असह्य हो उठा। दूसरे दिन लड़खड़ाते हुए दोनों इस अस्पताल के सामने पहुँचे। खैरातो अस्पतालवालों ने रहम खाया और लड़के को तो दाखिल कर लिया; लेकिन लड़की बाहर अकेली रह गई। सारा दिन उसकी खिड़की के पास पड़ी रहती और उसकी सेहत की दुआएँ मांगती। लेकिन एक दिन बड़े साहब ने देख लिया, और झिड़ककर

अस्पताल की हद से बाहर निकाल दिया। तब यह माँगने निकली। अस्पताल के पास ही एक रेल का पुल है, जहाँ आने-जानेवालों का सामान दूसरे पार ले जाने का एक पैसा मिलता है। दिन-भर डरती-सकुचाती मजदूरी तो करती रही, लेकिन अपनी नीली आंखों को लोगों की नजरों से न बचा पाई। कल रात जब इसी पीपल के पेड़ के नीचे आकर सोने लगी तो एक नर-पिशाच की परछाईं देखी। राजो पहले तो सहमी, फिर चीखती-चिल्लाती उठ खड़ी हुई और रात-भर उसके ढूँढते साये से भागती फिरी.....

दाढ़ीवाले सज्जन और भी दयालु हो रहे थे। उसके कन्धे सहलाते हुए धीरे से कहने लगे—'अगर यहाँ नहीं रहना चाहती, तो तेरा इन्तजाम मैं कर दूंगा, तू अपने देश चली जा। मैं तुझे गाड़ी में बिठला आऊँगा।'

ज्यों-ज्यों यह दाढ़ीवाला आदमी लड़की के नजदीक जा कर उसे आश्वासन देता, बीमार पति का हृदय उतना ही अधिक व्याकुल हो उठता। दर्शकों की फिकरेबाजी लड़के को इतना विचलित न कर पाती थी, जितना कि इस अपरिचित आदमी का आश्वासन।

जब पीछे खड़े हुए दो फौजी मजाक करते हुए चले गये, तब भीड़ कुछ चुप हुई। एक शख्स ने पूछा—

'क्यों बे, मजदूरी कहाँ करता है?'

'पुल पर, साहब!' लड़के ने जवाब दिया।

'पुल पर? अरे पुल पर मजदूरी करके इसका पेट भी पालेगा और अपना भी?'

'तो साले, खिला नहीं सकता था तो इस माँ को साथ क्यों उठा लाया था?' और फिर फिकरों की बौछार पड़ने लगी।

किसी को दया आई। जेब में से चार पैसे निकालकर लड़के के

पास फेंके और कहा—इसे अभी गांव भेज दे, नहीं तो तेरे हाथ से निकल जायेगी, समझा ?

लड़के ने इकन्नी माथे पर लगाई। उसकी टूटी आशा फिर बनने लगी। याचना-भरे स्वर में सब लोगों से माँगने लगा—

'दो दिन और गुजर हो जाने दो बाबू, फिर मैं मजदूरी लायक हो जाऊँगा। हम भिखमंगे नहीं हैं, बाबू !'

सब दर्शकों के सामने से तीन-तीन बार घूम जाने के बाद उसके हाथ में केवल पाँच आने पैसे इकट्ठे हो पाये। लड़के ने चुपचाप वह पैसे राजो की मुट्ठी में रख दिये।

ऐन इसी वक्त दूर से लाल पगड़ीवाला सिपाही अपनी गश्त पर आता हुआ नजर आया। लड़की ने उसे देखा तो झट से पेड़ के पीछे छिपकर खड़ी हो गई। बीमार ने सिपाही को आते देखा तो उसका सारा शरीर काँपने लगा। घबराया हुआ बोला—बाबूजी, इससे पैसे ले लो, नहीं तो सिपाही सब छीन लेगा।

'अरे, घबराओ नहीं, कुछ नहीं कहेगा।'

'नहीं बाबू जी, यह सब छीन लेगा, यह हमें मिलने भी नहीं देता।'

लड़की ने फौरन आगे बढ़कर साथ खड़े हुए दाढ़ीवाले के हाथ में पैसे रख दिये और फिर छिप कर खड़ी हो गई। सिपाही की नजर जब बीमार पर पड़ी तो वह बढ़ता हुआ चला आया—

'उठ हरामजादे, अभी तक यहीं पर बैठा है !'

'हजूर, अभी तक अस्पताल का दर्वाजा बन्द नहीं हुआ है। मांग नहीं रहा हूं हजूर। अभी चला जाऊंगा।' बीमार ने गिड़गिड़ाकर कहा।

सिपाही ने छूटते ही बीमार की काँपती देह पर जोर से दो ठुड्डे लगाये, और सिर परे थप्पड़ मारा, जिसेपर वह हड़बड़ा-कर हाथ जोड़ता

हुआ, लड़खड़ाता हुआ अस्पताल की ओर जाने लगा। अस्पताल के दर्वाजे पर पहुंच कर एक बार फिर लड़के ने चीख कर पुकारा—

'राजो, मत जाइयो... दो दिन इन पैसों पर गुजर कर। मुझे ठीक हो जाने दे। दोनों देस लौट चलेंगे, यहाँ एक दिन नहीं रहेंगे। मुझे छोड़कर मत जा।' और फिर धीरे-धीरे अपनी दुखती पसलियों पर हाथ रखे, दर्द से हाय-हाय करता हुआ, अन्धेरे में खो गया।

सिपाही चला गया। धीरे-धीरे भीड़ भी एक दुःस्वप्न के दृश्य की तरह बिखर गई। लेकिन दाढ़ीवाला, इस दुःस्वप्न की कुरूप छाया की तरह, फिर धीरे-धीरे लड़की के पास पहुंचा। अब अन्धेरे में देखनेवाला उसे कोई न था। केवल बीमार, अस्पताल की एक खिड़की के पीछे दोनों हाथों से खिड़की के सीखचों को पकड़े हुए आँखें फाड़-फाड़कर बाहिर झांक रहा था।

ऊब

अध्यापक के भाग्य का निर्णय करते समय विधाता ने कहा—'हे अध्यापक, तेरे निस्वार्थ सरस्वती पूजन से हम प्रसन्न हुए हैं। इस धन-लोलुप जगत में जिस मूक सहनशीलता के साथ तूने दारिद्र्य, अपमान और कठिनाइयों को स्वीकार किया है, वह श्रेयस्कर है। अध्यापक को ऐसा ही होना चाहिये। इस तपस्या के फलस्वरूप, हम तुझे, अपनी प्रसन्नता में, ऊब का वरदान देते हैं। यूं तो तेरे हर कार्यक्षेत्र में ऊब होगी, जब पढ़ाने बैठेगा तो लड़के भी ऊबेंगे और तू भी ऊबेगा; घर पर बैठेगा तो तेरा परिवार तुझ से और तू परिवार से ऊब उठेगा। परन्तु इस ऊब में वह गहराई नहीं जो तेरे मानसिक विकास में सहायक हो सके। हम तुझे साल में तीन या चार बार, असल, गहरी ऊब का रस पान करायेंगे ताकि तेरे मन की रही सही चञ्चलता भी शान्त हो जाए और तू एक सच्चा भारतीय अध्यापक बन सके। और वह होगा विद्यार्थियों की परीक्षा के समय जब तुझे बिना कुछ कहे, बिना किसी से बात किये या कुछ पढ़े या सोचे, केवल शून्य में ताकते हुए, तीन घण्टे के लिए हररोज निगरानी का काम करना पड़ेगा। ऐसा करने से तू जल्दी ही उस मानसिक जड़ता को पा सकेगा जो एक अध्यापक के जीवन का उद्देश्य है।...तथास्तु!"

मैं एक अध्यापक हूँ, विधाता का वर-दान पाकर धन्य धन्य हुआ हूँ। और आज उस दैविक रस को घूंट-घूंट करके पी रहा हूँ जो विधाता ने मुझे सौंपा है।

हाल कोई साठ फुट के लगभग लम्बा है और कोई चालीस फुट चौड़ा। इसमें विद्यार्थियों की तेरह कतारें, सैनिकों की पांत की तरह

नियम-बद्ध रूप में, पेपर लिखने में जुटी हुई हैं। सब लड़कों के सिर एक साथ झुके हुए, सब के दाएँ हाथ एक साथ लिखते हुए। और कहीं से कोई शब्द सुनाई नहीं दे रहा। हाल के एक सिरे पर एक ऊंचा प्लेटफार्म है जिस पर सुपरिन्टैण्डैण्ट साहिब, मेज के पीछे बैठे हुए, अपने मोटे-मोटे गालों पर मोटा-सा चश्मा लगाए कुछ लिख रहे हैं। और हाल के दूसरे सिरे पर, बड़े दरवाजे के ऐन बाहर, ढीली-ढाली खाकी वर्दी पहने, स्कूल का बूढ़ा चपरासी, अपनी सस्ती, पुरानी ऐनक में से हवा को देखता हुआ, एक स्टूल पर बैठा है। मेरे दाएं हाथ की दीवार पर, एक बड़ी गोलाकार घड़ी पौने नौ बजा रही है, और कह रही है कि अभी से क्यों थकने लगे, अभी तो पर्चा शुरू हुए केवल पन्द्रह मिनट हुए हैं।

जब परीक्षा शुरू हुई थी तो इन लड़कों के प्रति मेरे हृदय में तरह-तरह के उद्गार उठने लगे थे। यह मेरे अपने विद्यार्थी हैं, मुझ से सालभर तक शिक्षा ग्रहण करते रहे हैं। आज इन की परीक्षा होने जा रही है, इनका परिश्रम सफल हो, मेरा पढ़ाया सफल हो। मेरे यहाँ मौजूद होने से इनकी घबराहट कम होगी। दो एक ने मुझे उठकर नमस्कार भी किया। इस मान से बढ़कर अध्यापक को उत्साहित करने के लिये और क्या पुरस्कार होगा? और यह मान उसे जीवन भर मिलता रहता है; सड़कों के नाकों पर अक्सर अपरिचित हाथ बंधकर खड़े हो जाते हैं; सरकारी दफ्तरों में, डाकखाने या कचहरी में, कोई न कोई पुराना शागिर्द, कुर्सी पर से उठ खड़ा होता है। और अध्यापक को अपनी जिन्दगी भर की थकावट भूल जाती है। पर इतने में ही एक लड़के का प्रश्न का पर्चा उड़कर, गजभर की दूरी पर जा गिरा। जब मैंने उसकी ओर देखा तो लड़के ने मुझे उठा देने के लिये इशारा किया, जिसपर दो एक लड़के हंसने लगे। तब सारे उद्गार ठण्डे पड़ गये। लड़के की कलाई पर सुनहरी घड़ी बन्धी थी। मैंने पर्चा उठाकर

उसे दे दिया, और इस छोटे से अपमान से मुंह फेरकर फिर अपनी रेखा पर चलने लगा।

हाल की दहलीज से लेकर जहाँ छब्बीस लड़कों की लाइन खत्म होती है, वहाँ तक कुल अठारह कदम बनते हैं, और यहाँ मेरी निगरानी की सीमा आ जाती है। इससे आगे एक दूसरे अध्यापक का क्षेत्र शुरू होता है, जिन्हें मैं आज पहली बार देख रहा हूँ। यह सज्जन अपने दोनों हाथ कुर्ते के जेबों में डाले, दबी जबान में कुछ उच्चारण करते हुए अपनी रेखा पर चल रहे हैं। शायद वह गायत्री का जाप कर रहे हैं, जैसे मैं कदम गिन रहा हूँ। उनका कद लम्बा, और चेहरे पर संस्कृत के अध्यापकों की सी साधुता है। मेरे बायें हाथ की लाइनों में सक्सैना साहब चक्कर काट रहे हैं। यह एक कालिज में प्रोफेसर हैं, इस कारण स्कूल के अध्यापकों से बेरुखी से पेश आते हैं। सक्सैना साहब अपनी ऊब की परिधि तक नहीं पहुँचे क्योंकि वह अपनी किसी उधेड़बुन में खोए हुए हैं। एक प्रोफेसर को अपनी चिन्ताओं में कुछ मानसिक रस शायद मिलता होगा। पर, मैं अपनी चिन्ताओं में रस कहाँ से लाऊँ, छोटे-छोटे दूकानदारों के छोटे-छोटे कर्ज, मालिक मकान का तकाजा कि तुम रात को बिजली बहुत देर तक जलाये रखते हो, इनसे तो पल्ला छुड़ाने के लिये मैं स्कूल भाग आता हूँ।...मेरे दायें हाथ पर किसी दूसरे स्कूल के अध्यापक हैं, खद्दर का कोट, खद्दर की ही रंगदार बेमेल पतलून, छोटा माथा, सिर पर के छोटे-छोटे बालों में छिपकली की तरह लेटी हुई चुटिया, स्वयं लड़कों को आमन्त्रण देने वाला चेहरा कि आओ मुझे छेड़ो। जब भी पीठ मोड़ते हैं तो दो तीन लड़के अपने-अपने पर्चों पर से कोहनी हटा लेते हैं ताकि पीछे बैठे हुए लड़के उनके उत्तर पढ़ सकें। वह सज्जन पन्द्रह मिनट चलने के बाद ही कुर्सी पर जा बैठे हैं, और बैठते ही उनका मुंह लटक गया है। चलते रहो तो मन जागृत अवस्था में रहता है, बैठ जाओ तो मन सोने लगता है। इसी लिये

मैंने निश्चय किया है कि मैं चलता रहूँगा और कम से कम दो घण्टे तो चलकर काटूंगा।

घड़ी ने नौ बजाए हैं। अभी अढाई घण्टे बाकी हैं।

पिछले पन्द्रह मिनटों में मैं दो बार शिक्षा-मन्त्री बन चुका हूं। शिक्षा पद्धति में सैकड़ों अकल्पित संशोधन कर चुका हूँ। छः दिन जी तोड़ कर मेहनत करता हूँ, सातवें दिन मछलियां पकड़ने जाता हूँ और सिगार पीता हूँ। एक भाषण के बाद मैं प्लेटफार्म की सीढ़ियों पर से उतर रहा हूँ जब यही सुपरिन्टैण्डैंट साहिब मेरे गले में फूलों के हार डालने के लिये आ रहे हैं।... पर कल्पना के यह व्यंगपूर्ण दृश्य मुझे अशान्त और उद्विग्न कर जाते हैं। मुझे मन की एकाग्रता मिलती है तो केवल गिनती करने में। मेरे कदम बदस्तूर चल रहे हैं और मन कदम गिन रहा है। पूरे अठारह कदमों में मेरे क्षेत्र की सीमा आ पहुँचती है। अगर छोटे-से-छोटे कदम रखके चलूं तो पूरे चौतीस कदमों में यह लम्बाई पूरी कर पाता हूं। अगर बड़े-बड़े कदम रखूं और इस चाल से चलूं जिससे फौजी लोग किसी अफसर के मरजाने पर अर्थी के पीछे पीछे चलते हैं तो साढ़े पन्द्रह कदमों में अपनी रेखातक जा पहुँचता हूँ।

एक बार एक उपदेशक महोदय से सुना था कि प्राणायाम में एकाग्रता लाने का अचूक साधन, मन को किसी वस्तु पर केन्द्रित करने में है। इससे मन में स्थिरता आ जाती है। अतः मैं भी आज प्राणायाम का पहला पाठ पढ़ रहा हूँ। दीवार पर लगी सेठ माणिकलाल जी की तसवीर को ध्यान से देख रहा हूँ और उसका चिन्तन कर रहा हूं। उनकी आयु चौवन वर्ष के लगभग होगी। चौड़ा ललाट, सिर पर गहरे काले रंग की टोपी, बन्द गले का कोट, तसवीर गले से नीचे पांचवें बटन पर समाप्त हो जाती है। इसके नीचे उन्होंने शायद पाजामा पहना होगा। पाँव में क्या होगा, जूती या बूट? पर ध्यान वास्तविकता से भटककर कल्पना में जाने लगता है। सेठजी के कितने बेटे-बेटियाँ थीं; उनकी

आवाज गहरी थी या पतली ; उनके दाँत असली थे या नकली ; कुर्ते के नीचे यज्ञोपवीत पहनते थे या नहीं, किस नम्बर का चश्मा लगाते थे। पर यह सब कल्पना है, प्राणायाम नहीं, और मुझे इस कल्पना में रुचि नहीं। इससे दिमाग थक जाता है और किसी भी अनुमान के सच-झूठ का पता नहीं चलता। कदम गिनने में एकाग्रता भी रहती है और मन भी नहीं थकता।

पर अब मैंने कदम गिनना छोड़ दिया है। अब मैं हाल की अन्य चीजें गिनने लगा हुँ। हाल में दस बिजली के पंखे हैं, छः दरवाजे हैं, दो बड़े और चार छोटे। हाल के ऊपर दीवार के साथ एक खुली गैलरी है जिसपर पन्द्रह आलमारियां किताबों से ठसाठस भरी हुई रखी है, और एक-एक आलमारी के ऊपर एक-एक रेखाचित्र है, किसी दार्शनिक का या लेखक का या कवि का। कुल पन्द्रह रेखाचित्र हैं। हाल में कुल दो सौ पैंसठ लड़के इम्तहान दे रहे हैं। मेरे क्षेत्र में कुल छब्बीस लड़के हैं, केवल दस के पास फौएटेन पैन है,। केवल तीन लड़कों के बूट अच्छी हालत में हैं, बाकी सबके घिसे-फटे। दो लड़के नंगे पाँव हैं। सात लड़के ऐनक लगाए हुये हैं। एक लड़का बाएं हाथ से लिख रहा है। अब मैं काले-गोरे, दुबले-मोटे, गरीब-अमीर इत्यादि की अलग-अलग गणना करने लग गया हूं। आज पहली बार अपने विद्यार्थियों को ध्यान से देख रहा हूं। दो लड़के जो नंगे पाँव हैं, सदा क्लास में देर से पहुंचते थे। शायद दोनों भाई हैं। जी चाहता है कि उनसे पूछूं कि उनका घर कहाँ पर है, स्कूल से कितनी दूर है, उनका बाप जीता है या नहीं।....

अब और क्या गिनूं ! यहाँ तक कि धोबी की तरह इन लड़कों के कपड़े तक छाँट-छाँट कर गिन चुका हूँ : चार बुश-शर्ट, दो धोतियाँ, बारह पाजामे, तीन कोट, सत्तरह कमीजें, दो कुर्ते...। हाल के सब लड़कों तक मैं पहुंच नहीं सकता वरना इनके अंग-प्रत्यंग तक गिन डालता।

घड़ी पर नौ बजकर पच्चीस मिनट हुये हैं। अभी इस यातना के दो घण्टे और पाँच मिनट बाकी हैं।

मेरे क्षेत्र से आगे निगरानी करने वाले सज्जन अब भी अपनी रेखा पर चल रहे हैं। केवल उनके ओंठ चलने बन्द हो गये हैं, और हाथ जेबों में से निकल कर पीठ के पीछे बन्ध गये हैं, और चश्मा आँखों पर से हटकर माथे पर चढ़ गया है। चलने की गति भी शिथिल पड़ गई है। हाल के बाहिर, स्टूल पर बैठे हुए चपरासी ने एक टाँग उठाकर स्टूल के ऊपर रख ली है, और उसी के नीचे पड़ा हुआ खाली जूता, चपरासी को, मुंह बाए देख रहा है। सातवीं लाईन का एक अध्यापक कुछ पूछने के लिये सुपरिन्टेंडेंट साहिब की ओर जा रहा है। वह मुझे देख कर मुस्करा रहा है, लेकिन फीकी-सी, निर्जीव मुस्कान, जैसे उसे मतली आने वाली हो और उसे छिपा रहा हो।

मैं अब भी चीजें गिन रहा हूं, मगर किसी कोशिश से नहीं, अन्य-मनस्क सा होकर। पिछले बड़े दरवाजे के तीन शीशे टूटे हुए हैं। टूटे हुये शीशों का अब भी थोड़ा-थोड़ा भाग वहाँ पर अटका हुआ है। मैंने नत्थी के तागे गिन डाले हैं। अब बाँटने वाले पर्चे गिन रहा हूं। जब पर्चा समाप्त होगा तो मेरे दिमाग में चीजों के नम्बर ही नम्बर चक्कर काटेंगे।

पर मैं अब थक गया हूँ। पाँव बूटों में जकड़े हुए जान पड़ते हैं और लातों में हल्का हल्का दर्द होने लगा है। क्यों न कुर्सी पर कुछ देर के लिये बैठ जाऊं? अगर चपरासी की तरह एक लात ऊपर उठा कर बैठूं तो एक एक करके दोनों लातों को आराम मिल सकेगा। पर अगर किसी लौण्डे ने यूं बैठे हुए देख लिया तो मेरा तनिक सा रोब भी किरकिरा हो जायेगा। इसलिए मैं टांग पर टांग रखकर, शराफत से कुर्सी पर जा बैठा हूं, जैसा तसवीर खिचवाने के लिये कोई बैठता है। इतने से ही, कम से कम कमर को आराम मिलने लगा है।

मैं फिर खड़ा हुआ हूँ और कपड़ों को धूल झाड़कर, फिर से चहलकदमी करने लग गया हूँ। घड़ी में अब दस बजने में दस मिनट बाकी हैं।

लड़के अब भी पर्चा लिखने में जुटे हुए हैं। उनके लिये समय भागा जा रहा है। पलक मारते तीन घंटे बीत जाएंगे। कई लड़के वक्त की समाप्ति पर भी, पर्चे को कोहनी के नीचे दबाये, तेज रफ्तार से लिखते चले जायेंगे मगर मेरे लिये समय की गति थम गई है, और हाल और उसकी सब चीजें चित्रवत् खड़ी नजर आती हैं। अपनी-अपनी रेखाओं पर चलते हुए अध्यापक भी इसी चित्र का हिस्सा बन चुके हैं। एक-एक मिनट का बीतना दूभर हो उठा है।

इस निगरानी के मुझे दो रुपये मिलेंगे। हर अध्यापक को दो रुपये मिलेंगे। केवल सुप० साहब को पांच या सात रुपये मिलेंगे। मैं चार दिन निगरानी करूंगा, आठ रुपये के लिये। अगर दो रुपये की बजाए तीन रुपये भी मिलते तो शायद वक्त कट जाता। पर यह निरर्थक घूमना मुझ से नहीं सहा जाता। मन की जड़ता बढ़ रही है, और पाँव थक कर चूर हो गये हैं। और दिल खीज उठा है। आज पर्चा शुरू होने से पहले, एक अध्यापक ने सुप० साहब को कहा था कि दो रुपये बहुत कम हैं, इस पर कौन अध्यापक निगरानी पर आना पसन्द करेगा, तो वह हंस कर बोले, "अगर दो रुपये की बजाय यूनिवर्सिटी आठ आने भी देने लगे तो भी अध्यापक लोग इस काम पर आयेंगे।" यह चपत खाते ही वह अध्यापक चुप हो गये। कई सत्य इतने अपमानजनक होते हैं कि उन्हें सुनकर इनसान का मुंह बन्द हो जाता है। क्या मैं कल आऊंगा या नहीं? तिलमिलाए मन से कोई फैसला करना ठीक नहीं। मैं फिर सोचूंगा। पर आज जूं ही पर्चा समाप्त होगा, साइकल पर पाँव रखकर सीधा घर चला जाऊंगा। शरीर अब बैठना नहीं चाहता, लेटना चाहता है या किसी से लड़ना या किसी दीवार के साथ माथा फोड़ना। मगर भाग कर कैसे जा सकता हूँ? पहले पर्चे गिनने होंगे, फिर उन्हें सुप० साहब गिनेंगे, फिर जब तक उन्हें बांध-सीकर, उनकी सीवनों में लाख न लग जाएगा तबतक छुट्टी कहा मिलेगी? इतना ही नहीं, बाहिर बैठा चपरासी भी इस इन्तजार में है कि कब पर्चा समाप्त हो

और वह मुझसे बात कर पाये। यह क्या बात करना चाहता है? हाल में आने से पहले ही क्यों न उसने बात कर ली? शायद कुछ पैसे मांगना चाहता है, क्योंकि महीने का आखिर है, या शायद अपने बेटे की फीस माफ करवाना चाहता है। इसमें मैं क्या कर सकता हूँ? इसे कह दूंगा कि कल बात करूंगा, आज नहीं। खुद तो अब दोनों टांगें स्टूल पर रखे बड़े मजे से बैठा है!

घड़ी ने साढ़े दस बजाये हैं। अब एक घण्टा बाकी रह गया है। यह भी धीरे-धीरे कट जायेगा। 'शून्य' का दूसरा छोर नजर आने लग गया है। अभी-अभी लड़के नये कागज मांगने लगेंगे, इस के बाद पर्चे नत्थी करने के लिये तागा लेंगे। मैं इधर उधर पहुंचकर कागज बांटने में जुटा रहूंगा। पर अभी तक तो लड़के जूं के तूं काम में लगे हुए हैं .....

न मालूम कितनी देर तक मैं फिर चलता रहा हूं और वक्त काटने के उपाय सोचता रहा हूँ। कितनी ही बार थक कर कुर्सी पर जा बैठा हूं, और कितनी ही बार फिर उठकर चक्कर काटने लगा हूं। मेरी किस्मत तब जागी जब मैं, कुर्सी पर अपना एक पांव रखे, कुर्सी की पीठ के गोल-गोल छेद गिन रहा था, कि 'स्टाप राइटिंग' का ऊंचा आदेश सुनाई पड़ा और लड़के उठ-उठकर अपने पर्चे देने लगे। हाल में कागजों की चर्र्र् मर्र् का शब्द गूंजने लगा, और मैं ने आराम की ठण्डी सांस ली।

हाल के बाहिर चपरासी खड़ा राह देख रहा था। उस की पुरानी वर्दी, मैला बूढ़ा चेहरा, झुके हुए कन्धे और टूटी-फूटी ऐनक मेरी ऊब को और भी असहय बना रही थी। मैंने हाल के बाहिर पांव रखा ही था कि वह आगे बढ़ आया। मुझे उसके चेहरे पर हल्की मुसकान नजर आई। यह मुस्करा क्यों रहा है?

"कहो क्या बात है, ताराचन्द?"

"अगर आप जल्दी में हो तो कल बात कर लूं। आप कल भी आएंगे न ?"

"नहीं, मैं सोचता हूं नहीं आऊंगा। दो रूपये की खातिर कौन यहं फजूल चक्कर काटता फिरे। मैं तो एक ही दिन में थक गया हूं।"

"नहीं साहब, आजके जमाने में जो मिल जाए वही अच्छा। छोड़िये नहीं। और काम ही क्या है, मन चाहे तो बैठे रहो, मन चाहे तो घूमते रहो।"

"तुम क्या जानो आदमी कितना ऊब उठता है।" पर बूढ़ा ताराचन्द हंसने लगा। मैं हैरान सा होकर उसके मुंह की ओर देखने लगा। यह हंस क्यों रहा है ? फिर मैं समझ गया। वह भी तो मेरे साथ तीन घंटे तक स्टूल पर ही बैठा रहा है, वह भी तो ऊब उठा होगा। पर मेरा मन ठिठक सा गया। ताराचन्द के नजदीक जाकर, उसे ध्यान से देखते हुए मैं ने पूछा :

"ताराचन्द, कितने बरस इस स्कूल में काम किया है ?"

"साहिब, कोई पच्चीस बरस होने वाले हैं।"

"पच्चीस बरस से तुम इसी तरह स्टूल पर बैठते चले आ रहे हो ?"

"जी, यूं ही समझ लीजिये।" ताराचन्द कहकर हंसने लगा।

"सदा से यही काम है ?"

"जी, प्रिन्सिपल साहिब के दफ्तर के बाहर जो रोज बैठता हूं, आप देखते ही हैं।"

"कितने घण्टे रोज बैठते हो ?"

"कभी छः कभी सात, इतना तो हो ही जाता है।"

मैं काँप उठा। सारा दिन स्टूल पर बैठे रहना उसका काम था। उसी काम पर अपना लड़कपन, जवानी, बुढ़ापा, अपना सारा जीवन अर्पण कर चुका था। बिना कुछ देखे इसकी आँखें कमजोर पड़ गई थीं। इसी स्टूल पर बैठे-बैठे इसकी पीठ झुक गई थी। केवल शून्य को ही ताकते हुए यह बूढ़ा हो गया था।

"तुम्हें क्या तलब मिलती है, ताराचन्द ?"

"साहब तीन रुपये से शुरू किया था। तब लौंडा सा था। गाँव से भाग कर आया था।"

"भाग कर आए थे ? वह क्यों ?"

"वह लड़कपन के दिन थे साहब, शहर देखने के शौक से भाग आया।" ताराचन्द ने हंसते हुए कहा। उसकी घनी मूछों के पीछे, उसके टूटे दान्तों की हसी में अब भी लड़कपन की सरलता छिपी थी।

"तुम्हें मुझसे क्या काम है ताराचन्द ?"

"साहिब एक अर्ज है। अगले वर्ष मुझे यहाँसे छुट्टी मिल जायगी। आप प्रिन्सिपल साहब से सिफारिश करदें कि वह मेरे बेटे को इस काम पर लगा लें। अच्छा समझदार बच्चा है, धीरे-धीरे काम सीख जाएगा।"

"तुम अपने लड़के को भी इसी काम में डालना चाहते हो ?"

"और क्या करूं साहब ? एक जगह पर टिक तो जायेगा। धीरे-धीरे तलब भी बढ़ जायगी। अभी तो वह मानता नहीं, पर जो प्रिंसिपल साहब ने हाँ कर दी तो मैं उसे मनवा लूंगा।"

मैं चुपचाप उसके मुंह की ओर ताकने लगा। मेरा मन जो गिनने का आदी बना हुआ था, अनजाने में उसके चेहरे की झुर्रियाँ गिनने लगा। आँखों के इर्द-गिर्द झुर्रियों के घेरे, गालों पर झुर्रियों की लम्बी-लम्बी लकीरें, माथे पर, कनपटियों पर, कानों के नीचे गले पर झुर्रियों के चक्कर, जो गले को दबोचे हुए हैं। पचीस साल की ऊब की झुर्रियाँ गिनना आसान न था।

"मैं कह दूंगा, ताराचन्द, जरूर कह दूंगा।"

मैं कहता हुआ बढ़ गया। पर मुड़कर उसके चेहरे को देखने का साहस न हुआ। ताराचन्द को ऊब का वरदान कहाँ से मिला है ?

गंगो का जाया

गंगो की जब नौकरी छूटी तो बरसात का पहला छींटा पड़ रहा था। पिछले तीन दिन से गहरे नीले बादलों के पुञ्ज आकाश में करवटें ले रहे थे, जिनकी छाया में गरमी से अलसाई हुई पृथ्वी अपने पहले ठण्डे उच्छ्वास छोड़ रही थी, और शहर भर के बच्चे-बूढ़े बरसात की पहली बारिश का नंगे बदन स्वागत करने के लिये उतावले हो रहे थे। यह दिन नौकरी से निकाले जाने का न था। मजदूरी की नौकरी थी बेशक, पर बनी रहती, तो इसकी स्थिरता में गंगो भी बरसात के छींटे का शीतल स्पर्श ले लेती। पर हर शगुन के अपने चिन्ह होते हैं। गंगो ने बादलों की पहली गर्जन में ही जैसे अपने भाग्य की आवाज सुन ली थी।

नौकरी छूटने में देर नहीं लगी। गंगो जिस इमारत पर काम करती थी, उसकी निचली मंजिल तैयार हो चुकी थी, अब दूसरी मंजिल पर काम चल रहा था। नीचे मैदान में से गारे की टोकरियाँ उठा-उठा कर छत पर ले जाना गंगो का काम था। मगर आज सुबह जब गंगो टोकरी उठाने के लिये जमीन की ओर झुकी, तो उसके हाथ जमीन तक न पहुँच पाए। ज़मीन पर, पाँव के पास पड़ी दुई टोकरी को छूना एक गहरे कुएं के पानी को छूने के समान होने लगा।

इतने में किसी ने गंगो को पुकारा, "मेरी मान जाओ गंगो, अब टोकरी तुमसे न उठेगी। तुम छतपर ईंट पकड़ने के लिये आ जाओ।"

छत पर, लाल ओढ़नी पहने और चार ईंटें उठाये, दूलो मजदूरन खड़ी उसे बुला रही थी।

गंगो ने न माना और फिर एक बार टोकरी उठाने का साहस किया, मगर होंट काट कर रह गयी। टोकरी तक उसका हाथ न पहुँच पाया।

गंगो के बच्चा होने वाला था, कुछ ही दिन बाकी रह गये थे। छत पर बैठ कर ईंट पकड़ने वाला काम आसान था। एक मज़दूर, नीचे मैदान में खड़ा, एक-एक ईंट उठा कर छत्त की ओर फैंकता, और ऊपर बैठी हुई मज़दूरन उसे झपट कर पकड़ लेती। मगर गंगो का इस काम से खून सूखता था। कहीं झपटने में हाथ चूक जाये, और उड़ती हुई ईंट पेट पर आ लगे तो क्या होगा?

ठेकेदार हर मज़दूर के भाग्य का देवता होता है। जो उसकी दया बनी रहे तो मज़दूर के सब मनोरथ सिद्ध हो जाते हैं, पर जो देवता के तेवर बदल जाएँ तो अनहोनी भी हो के रहती है। गंगो खड़ी सोच ही रही थी कि कहीं से, मकान की परिक्रमा लेता हुआ ठेकेदार सामने आ पहुँचा। छोटा सा पतला शरीर, काली टोपी, घनी-घनेरी मूंछों में से बीड़ी का धुंआ छोड़ता हुआ, गंगो को देखते ही चिल्ला उठा :

'खड़ी देख क्या रही है? उठाती क्यों नहीं; जो पेट निकला हुआ था, तो आई क्यों थी?

गंगो धीरे-धीरे चलती हुई ठेकेदार के सामने आ खड़ी हुई। ठेकेदार का डर होते हुए भी गंगो के होंटों पर से वह हल्की सी स्निग्ध मुस्कान ओझल न हो पाई, जो महीने भर से उस के चेहरे पर खेल रही थी, जब से बच्चे ने गर्भ में ही अपने कौतुक शुरू कर दिये थे और गंगो की आँखें जैसे अन्तर्मुखी हो गयी थीं। ठेकेदार झगड़ता तो भी शान्त रहती, और जो उसका घर वाला बात-बात पर तिनक उठता, तो भी चुपचाप सुनती रहती।

'काम क्यों नहीं करूँगी? छत पर ईंट पकड़ने का काम दे दो, वह कर लूँगी।' गंगो ने निश्चय करते हुए कहा

'तेरे बाप का मकान बन रहा है, जो जी चाहा करेगी? चल दूर हो

यहाँ से। आधे दिन के पैसे ले और दफ़ा हो जा। हरामख़ोर आ जाते हैं.....'

'तुम्हें क्या फ़रक पड़ेगा, दूलो मेरा काम कर लेगी, मैं उसकी जगह चली जाऊंगी, काम तो होता रहेगा।'

'पहले पेट खाली करके आओ, फिर काम मिलेगा।'

क्षण भर में ठेकेदार का रजिस्टर खुल गया और गंगो के नाम पर लकीर फिर गयी।

ऐन उसी वक्त बारिश का छींटा भी पड़ने लगा था। गंगो ने समझ लिया कि जो आसमानमें बादल न होते तो काम पर से भी छुट्टी न मिलती। आकाश में बादल आए नहीं, कि ठेकेदार को काम ख़त्म करने की चिन्ता हुई नहीं। इस हालत में गर्भ वाली मज़दूरन को कौन काम पर रखेगा। गंगो चुपचाप, ओढ़नी के पल्ले से अपने गर्भ को ढकती हुई बाहिर निकल आई।

—उन दिनों दिल्ली फिर से जैसे बसने लगी थी। कोई दिशा या उपदिशा ऐसी न थी, जहाँ नई आबादियों के झुरमुट न उठ रहे हों। नये मकानों की लम्बी कतारें, समुद्र की लहरों की तरह फैलती हुई, अपने प्रसार में दिल्ली के कितने ही खण्डहर और स्मृति-कंकाल रौंदती हुई, बढ़ रही थीं। देखते ही देखते एक नई आबादी, गर्व से माथा ऊँचा किये, समय का उपहास करती हुई खड़ी हो जाती। लोग कहते दिल्ली फिर से जवान हो रही है। नई आबादियों की बाढ़ आ गई थी। नया राष्ट्र, नये निर्माण-कार्य, लोगों को इस फैलती राजधानी पर गर्व होने लगा था।

जहाँ कहीं किसी नई आबादी की योजना पनपने लगती, तो सैकड़ों मज़दूर खिंचे हुए, अपने फूस के छप्पर कन्धों पर उठाए, वहाँ जा पहुँचते, और उसी की बगल में अपनी झोंपड़ों की बस्ती खड़ी कर लेते। और जब वह नई आबादी बन कर तैयार हो जाती, तो फिर मजदूरों की

टोलियाँ अपने फूस के छप्पर उठाए, किसी दूसरी आबादी की नींव रखने चल पड़तीं। मगर ज्योंही बरसात के बादल आकाश में मण्डराने लगते, तो सब काम ठप्प हो जाता, और मजदूर अपने झोंपड़ों में बैठे, आकाश को देखते हुए, चौमासे के दिन काटने लगते। कई मजदूर अपने गाँवों को चले जाते, पर अधिकतर छोटे-मोटे काम की तलाश में सड़कों पर घूमते रहते। काम इतना न था जितने मजदूर आ पहुंचते थे। दिल्ली के हर खण्डहर की अपनी गाथा है, कहानी है, पर मजदूर की फूस की झोंपड़ी का खण्डहर क्या होगा, और कहानी क्या होगी? हँसती खेलती नयी आबादियों में इन झोंपड़ों का, या इन झोपड़ों में खेले गये नाटकों का, स्मृति-चिन्ह भी नहीं मिलता।

उस रात गंगो और उसका पति घीसू, देर तक झोंपड़े के बाहिर बैठे अपनी स्थिति का सोचते रहे।

'जो छुट्टी मिल गई थी तो घर क्यों चली आई, कहीं दूसरी जगह काम देखती।'

'देखा है। इस हालत में कौन काम देगा? जहाँ जाओ ठेकेदार पेट देखने लगते हैं।'

झोंपड़े के अन्दर उनका छः बरस का लड़का रीसा सोया पड़ा था। घीसू कई दिनों से चिन्तित था, तीन आदमी खाने वाले, और कमाने वाला अब केवल एक, और ऊपर चौमासा और गंगो की हालत! उसका मन खीज उठा। अगर और पन्द्रह-बीस रोज मजदूरी पर निकल जाते, तो क्या मुश्किल था? गर्भ वाली औरतें बच्चा होने वाले दिन तक काम पर जुटी रहती हैं। घीसू गठीले बदन का, नाटे कद का मजदूर था, जो किसी बात पर तिनक उठता तो घण्टों उस का मन अपने काबू में न रहता। थोड़ी देर चिलम के कश लगाने के बाद धीरे-धीरे कहने लगा, 'तुम गांव चलो जाओ।'

'गांव में मेरा कौन है?'

'तू पहले से ही सब पाठ पढ़े हुए है, तू इस हालत में जाएगी, तो तुझे घर से निकाल देंगे !'

'मैं कहीं नहीं जाऊँगी। तुम्हारा भाई जमीन पर पांव नहीं रखने देगा। दो दफे तो तुम से लड़ने मरने को नौबत आ चुकी है।'

'तो यहाँ क्या करेगी ? मेरे काम का भी कोई ठिकाना नहीं। सुनते हैं सरकार जियादह मजदूर लगा कर तीन दिन में बाकी सड़क तैयार कर देना चाहती है।

'मरम्मती काम तो चलता रहेगा !' गंगो ने धीरे से कहा।

'मरम्मती काम से तीन जीव खा सकते हैं ? एक-दिन काम है, चार दिन नहीं।' काफी रात गये तक यह उधेड़ बुन चलती रही।

सोमवार को गंगो काम पर से बरखास्त हुई, और सनीचर तक पहुँचते-पहुँचते झोंपड़ी की गिरस्ती डांवाडोल हो गई। मां, बाप और बेटा, तीन जीव खाने वाले, और कमाने वाला केवल एक। गंगो काम की तलाश में सुबह घर से निकल जाती, और दोपहर तक बस्ती के तीन तीन चक्कर काट आती। किसी से काम का पूछती तो या तो वह हंसने लगता, या आसमान पर मण्डराते बादल दिखा देता। सड़कों पर दर्जनों मजदूर दोपहर तक घूमते हुए नजर आने लगे। फिर एक दिन जब धीसू ने घर लौट कर सुना दिया कि सरकारी सड़क का काम समाप्त हो चुका है, तो धीसू और गंगो, मजदूरों के स्तर से लुढ़क कर आवारा लोगों के स्तर पर आ पहुँचे। कभी चूल्हा जलता कभी नहीं। भर पेट खाना किसी को न मिल पाता। छोटा बालक रीसा, जो दिन भर खेलते न थकता था, अब झोंपड़ेके इर्दगिर्द ही मंडराता रहता। पति-पत्नी रोज़ रात को झोंपड़े के बाहिर बैठते, झगड़ते,परामर्श करते और बात-बात पर खीज उठते।

फिर एक रात, हजार सोचने और भटकने के बाद धीसू के उद्विग्न मन ने घर का खर्चा कम करने की तरकीब सोची। अधभरे पेट की भूख को चिलम के धुएं से शान्त करते हुये बोला, 'रीसे को किसी काम पर लगा दें।'

'रीसा क्या करेगा, छोटा सा तो है !'

'छोटा है ! चंगे भले आदमी का राशन खाता है। इस जसे सब लड़के काम करते हैं।'

गंगो चुप रही। कमाऊ बेटा किसे अच्छा नहीं लगता ? मगर रीसा अभी सड़क पर चलता भी था, तो बाप का हाथ पकड़ कर। वह क्या काम करेगा ? पर घीसू कहता गया, 'इस जैसे लौंडे बूट पालिश करते हैं, साइकलों की दूकानोंपर काम करते हैं, अखबार बेचते हैं, क्या नहीं करते ? कल इसे मैं गणेशी के सपुर्द कर दूंगा, इसे बूटपालिश करना सिखा देगा।'

नणेशी घीसू के गांव का आदमी था। इस बस्ती से एक फर्लांग दूर, पुल के पास छोटी सी कोठड़ी में रहता था। एक छोटा सा संदूकचा कन्धे पर से लटकाए गलियों के चक्कर काटता और बूटों के तलवे लगाया करता था।

दूसरे दिन घीसू काम की खोज में झोंपड़े में से निकलते हुए गंगो को कह गया :

'मैं गणेशी को रास्ते में कहता जाऊँगा। तू सूरज चढ़ने तक रीसे को उसके पास भेज देना।'

रीसा काम पर निकला। छोटा सा पतला शरीर, चकित, उत्सुक आंखें, बदन पर एक ही कुर्ता लटकाए हुए। गणेशी के घर तक पहुँचना कोन सो आसान बात थो। रास्ते में प्रकृति रीसे के मन को लुभाने के लिये जगह-जगह अपना मायाजाल फैलाए बैठी थी। किसी जगह दो लौंडे झगड़ रहे थे, उनका निपटारा करना जरूरी था, रीसा घण्टा भर उन्हींके साथ घूमता रहा; कहीं एक भैंस कीचड़ में फंसी पड़ी थी; कहीं पर एक मदारी अपने खेल दिखा रहा था, रीसा दिन भर घूम-फिर कर, दोपहर के वक्त, हाथ में एक छड़ी घुमाता हुआ घर लौट आया।

कह देना आसान था कि रीसा काम करे, मगर रीसे को काम में लगाना नये बैल को हल में जोतने के बराबर था। पर उधर झोंपड़े में

बची बचाई रसद क्षीण होती जा रही थी। दूसरे दिन घीसू उसे स्वयं गणेशी के सपुर्द कर आया, और पांच-सात आने पैसे भी पालिश की डिब्बिया और ब्रुश के लिये दे आया।

उस दिन तो रीसा जैसा हवा में उड़ता रहा। दिल्ली की नई-नई गलियां घूमने को मिलीं, नये-नये लोग देखने को मिले। चप्पे-चप्पे पर आकर्षण था। रीसे की समझ में न आया कि बाप गुस्सा क्यों हो रहा था जब उसे यहाँ घूमने के लिये भेजना चाहता था। दुकानें रंगबिरंगी चीजों से लदी हुईं और भीड़ इतनी कि रीसे का लुब्ध मन भी चकरा गया।

रीसे की मां सड़क पर आंखें गाड़े उसकी राह देख रही थी, जब रीसा अपने बोझल पांव खींचता हुआ घर पहुँचा। अपने छः सालों के नन्हें से जीवनमें वह इतना कभी नहीं चल पाया था, जितना कि वह आज एक दिन में। मगर मां को मिलते ही वह उसे दिन भर की देखी दिखाई सुनाने लगा। और जब बाप काम पर से लौटा तो रीसा अपना ब्रुश और पालिश की डिब्बिया उठा कर भागता हुआ उस के पास जा पहुँचा, 'बप्पू, तेरा जूता पालिश करदूं?,

जिसे सुन कर, घीसू के हर वक्त तने हुए चेहरे पर भी हल्की सी मुस्कान दौड़ गई।

'मेरा नहीं, किसी बाबू का करना जो पैसे भी देगा।,

और गंगो और उस का पति, अपने कमाऊ बेटे की दिनचर्या सुनते हुए, कुछ देर के लिये अपनी चिन्ताएं भूल गये।

दूसरा दिन आया। घीसू और रीसा अपने-अपने काम पर निकले। दो रोटियां, एक चिथड़े में लिपटी हुई, घीसू की बगल के नीचे, और एक रोटी रीसे की बगल के नीचे। दोनों सड़क पर इकट्ठे उतरे और फिर अपनी-अपनी दिशा में जाने के लिये अलग हो गये।

पर आज रीसा जब सड़क की तलाई पार करके पुल के पास पहुँचा तो गणेशी वहां पर नहीं था।

थोड़ी देर तक मुंह में उंगली दबाए वह पुल पर आते-जाते लोगों को देखता रहा, फिर गणेशी की तलाश में आगे निकल गया। शहर की गलियां, एक के बाद दूसरी, अपना जटिल इन्द्रजाल फैलाए, जैसे रीसे की इन्तजार में ही बैठी थीं। एक के बाद दूसरी गली में वह बढ़ने लगा, मगर किसी में भी उसे कल का परिचित रूप नजर नहीं आया, न ही कहीं गणेशी की आवाज सुनाई दी। थोड़ी देर तक घूमने के बाद रीसा एक गली के मोड़ पर बैठ गया, अपनी पालिश की डिब्बिया और ब्रुश सामने रख लिये और अपने पहले ग्राहक की इन्तजार करने लगा। गणेशी की तरह उसने मुंह टेढ़ा करके 'पालिश श श श····!' का शब्द पूरी चिल्लाहट के साथ पुकारा। पहले तो अपनी आवाज ही सुनकर स्तब्ध हो रहा, फिर निःसंकोच बार-बार पुकारने लगा। पांच-सात मर्तबा जोर-जोर से चिल्लाने पर एक बाबू, जो सामने एक दूकान की भीड़ में सौदा खरीदने की इन्जार में खड़ा था, रीसे के पास चला आया।

'पालिश करने का क्या लोगे?'

'जो खुसी हो दे देना।' रीसे ने गणेशी के वाक्य को दोहरा दिया। बाबू ने बूट उतार दिये, और दूकान की भीड़ में फिर जाकर खड़ा हो गया।

रीसे ने अपनी डिब्बिया खोली। गणेशी के वाक्य तो वह दोहरा सकता था, मगर उसकी तरह हाथ कैसे चलाता? बूट पर पालिश क्या लगी जितनी उसकी टाँगों, हाथों और मुंह को लगी। एक जूते पर पालिश लगाने में रीसे की आधी डिब्बिया खर्च हो गई। अभी बूट के तलवे पर पालिश लगाने की सोच ही रहा था कि बाबू सामने आन खड़ा हुआ। रीसे के हाथ अनजाने में ठिठक गये। बाबू ने बूटों की हालत देखी, आव देखा न ताव, जोर से रीसे के मुंह पर थप्पड़ दे मारा, जिससे रीसे का मुंह घूम गया। उसकी समझ में न आया कि बात क्या हुई है। गणेशी को तो किसी बाबू ने थप्पड़ नहीं मारा था।

'हरामजादे, काले बूटों पर लाल पालिश !' और गुस्से में गालियाँ देने लगा।

पास खड़े लोगों ने यह अभिनय देखा, कुछ हंसे, कुछ एक ने बाबू को समझाया, दो-एक ने रीसे को गालियाँ दीं, और उसके बाद बाबू गालियाँ देता हुआ, बूट पहनकर चला गया। रीसा, हैरान और परेशान कभी एक के मुंह की तरफ, कभी दूसरे के मुंह की तरफ देखता रहा, और फिर वहाँ से उठकर, धीरे-धीरे गली के दूसरे कोने पर जाकर खड़ा हो गया। हर राह जाते बाबू से उसे डर लगने लगा। गणेशी की तरह 'पालिश श श !' चिल्लाने की उसकी हिम्मत न हुई। रीसे को माँ की याद आई, और उलटे पाँव वापिस हो लिया। मगर गलियों का कोई छोर किनारा न था, एक गली के अन्त तक पहुंचता तो चार गलियां और सामने आ जातीं। अनगिनत गलियों में घूमने के बाद वह घबरा कर रोने लगा, मगर वहाँ कौन उसके आंसू पोंछने वाला था। एक गली के बाद दूसरी गली लांघता हुआ, कभी गणेशी की तलाश में, कभी माँ की तलाश में वह दोपहर तक घूमता रहा। बार-बार रोता और बार-बार स्तब्ध और भयभीत चुप हो जाता। फिर शाम हुई और थोड़ी देर बाद गलियों में अन्धेरा छाने लगा। एक गली के नाके पर खड़ा सिसकियाँ ले रहा था, कि उस जैसे ही लड़कों का टोला यहाँ-कहाँ से इकट्ठा होकर उसके पास आ पहुंचा। एक छोटे से लड़के ने अपनी फटी हुई टोपी सिर पर खिसकाते हुए कहा, 'अबे साले रोता क्यों है ?'

दूसर ने उसका बाजू पकड़ा और रीसे को खींचते हुए एक बराएडे के नीचे ले गया। तीसरे ने उसे धक्का दिया ! चौथे ने उसके कन्धे पर हाथ रखे हुए, उसे बराएडे के एक कोने में बिठा दिया। फिर उस छोटे से लड़के ने अपने कुर्ते की जेब में से थोड़ी सा मूंगफली निकाल कर रीसे की झोली में डाल दी।

'ले साले, कभी कोई रोता भी है ? हमारे साथ घूमा कर, हम भी बूट पालिश करते हैं।'

आधी रात गये, नन्हा रीसा, जीवन की एक पूरी मंजिल एक दिन में लांघ कर, अपने सिर के नीचे ब्रुश और पालिश की डिब्बिया और एक छोटा-सा चिथड़ा रखे, उसी बराण्डे की छत के नीचे अपनी यात्रा के नये साथियों के साथ, भाग्य की गोद में सोया पड़ा था।

—उधर, झोंपड़े के अन्दर लेटे-लेटे, कई घण्टे की विफल खोज के बाद, घीसू गंगो को आश्वासन दे रहा था : 'मुझे कौन काम सिखाने आया था ? सभी गलियों में ही सीखते हैं। मरेगा नहीं, घीसू का बेटा है, कभी न कभी तुझे मिलने आ जाएगा।'

घीसू का उद्विग्न मन जहाँ बेटे के यूं चले जाने पर व्याकुल था, वहाँ इस दारुण सत्य को भी न भूल सकता था कि अब झोंपड़े में दो आदमी होंगे, और बरसात कटने तक, और गंगो की गोद में नया जीव आ जाने तक, झोंपड़ा शायद सलामत खड़ा रह सकेगा।

गंगो झोंपड़े की बालिश्त भर ऊंची छत को ताकती हुई चुपचाप लेटी रही। उसी वक्त गंगो के पेट में उसके दूसरे बच्चे ने करवट ली। जैसे संसार का नवागन्तुक संसार का द्वार खटखटाने लगा हो। और गंगो ने सोचा—यह क्यों जन्म लेने के लिये इतना बेचैन हो रहा है ? गंगो का हाथ कभी पेट के चपल बच्चे को सहलाता, कभी आँखों से आँसू पोंछने लगता।

आकाश पर बरसात के बादलों से खेलती हुई चाँद की किरनों के नीचे नये मकानों की बस्ती झिलमिला रही थी। दिल्ली फिर बस रही थी, और उसका प्रसार दिल्ली के बढ़ते गौरव को चार चाँद लगा रहा था।

भाग्य-रेखा

कन्नाट-सरकस के बाग में जहाँ नई दिल्ली की सब सड़कें मिलती हैं, जहाँ शाम को रसिक और दोपहर को बेरोजगार आ बैठते हैं, तीन आदमी, खड़ी धूप से बचने के लिये, छाँह में बैठे, बीड़ियाँ सुलगाए बातें कर रहे हैं। और उनसे जरा हट कर, दाईं ओर, एक आदमी खाकी से कपड़े पहिने, अपने जूतों का सिरहाना बनाए, घास पर लेटा हुआ मुतवातर खांस रहा है। पहली बार जब वह खांसा तो मुझे बुरा लगा। चालीस पैंतालीस वर्ष का कुरुप-सा आदमी, सफेद छोटे-छोटे बाल, काला, छाइयों भरा चेहरा, लम्बे-लम्बे दान्त और कन्धे आगे को झुके हुए, खांसता जाता और पास ही घास पर थूकता जाता। मुझ से न रहा गया। मैंने कहा :

'सुना है विलायत में सरकार ने जगह-जगह पीकदान लगा रखे हैं, ताकि लोगों को घास-पौदों पर न थूकना पड़े।"

उसने मेरी ओर निगाह उठाई, पल भर घूरा, फिर बोला :

"तो साहिब, वहाँ लोगों को ऐसी खाँसी भी न आती होगी।" फिर खांसा, और मुस्काता हुआ बोला :

"बड़ी नामुराद बीमारी है, इसमें आदमी घुलता रहता है, मरता नहीं।"

मैंने सुनी अनसुनी करके, जेब में से अखबार निकाला और देखने लगा। पर कुछ देर बाद कनखियों से देखा, तो वह मुझ पर टिकटिकी बांधे मुस्करा रहा था। मैंने अखबार छोड़ दी :

"क्या धन्धा करते हो?"

"जब धन्धा करते थे तो खांसी भी यूं तंग न किया करती थी।"

"क्या करते थे ?"

उस आदमी ने अपने दोनों हाथों की हथेलियाँ मेरे सामने खोल दीं। मैंने देखा, उसके दाएं हाथ के बीच की तीन उंगलियाँ कटी थीं। वह बोला :

"मशीन से कट गईं। अब मैं नई उंगलियाँ कहाँ से लाऊँ। जहाँ जाओ मालिक पूरी दस उंगलियाँ माँगता है।" कह कर हंसने लगे।

"पहले कहाँ काम करते थे ?"

"कालका वर्कशाप में।"

हम दोनों फिर चुप हो गये। उसकी राम कहानी सुनने को मेरा जी नहीं चाहता था, बहुत-सी राम-कहानियां सुन चुका था। थोड़ी देर तक वह मेरी तरफ देखता रहा, फिर छाती पर हाथ रखे लेट गया। मैं भी लेट कर अखबार देखने लगा, मगर थका हुआ था, इसलिये मैं जल्दी ही सो गया।

जब मेरी नींद टूटी तो मेरे नजदीक धीमा-धीमा वार्तालाप चल रहा था :

"यहाँ पर भी तिकोन बनती है, जहाँ आयु की रेखा और दिल की रेखा मिलती हैं। देखा ? तुम्हें कहीं से धन मिलने वाला है।"

मैंने आँखें खोलीं। वही दमे का रोगी घास पर बैठा, उंगलियों कटे हाथ की हथेली एक ज्योतिषी के सामने फैलाए अपनी किस्मत पूछ रहा था।

"लाग-लपेट वाली बात नहीं करो, जो हाथ में लिखा है, वही पढ़ो।"

"इधर अंगूठे के नीचे भी तिकोन बनती है। तेरा माथा बहुत साफ है, धन जरुर मिलेगा।"

"कब ?"

"जल्दी ही।"

देखते ही देखते उसने ज्योतिषी के गाल पर एक थप्पड़ दे मारा। ज्योतिषी तिलमिला गया।

"कब धन मिलेगा ? धन मिलेगा। तीन साल से भाई के टुकड़ों पर पड़ा हूं। कहता है, धन मिलेगा।"

ज्योतिषी अपना पोथी-पत्रा उठाकर जाने लगा, मगर यजमान ने कलाई खींच कर बिठा लिया :

"मीठा-मीठी बातें तो बता दीं, अब जो लिखा है वह बता, मैं कुछ नहीं कहूँगा।"

"ज्योतिषी कोई बीस बाईस वर्ष का युवक था। काला चेहरा, सफेद कुर्ता और पाजामा जो जगह-जगह से सिला हुआ था। बात-चीत के ढंग से बंगाली जान पड़ता था। पहले तो घबराया फिर हथेली पर यजमान का हाथ लेकर रेखाओं की मूकभाषा पढ़ता रहा। फिर धीरे से बोला :

"तेरे भाग्य-रेखा नहीं है।"

यजमान सुन कर हंस पड़ा :

"ऐसा कह न साले, छिपाता क्यों है ! भाग्य-रेखा कहाँ होती है ?"

"इधर, यहाँ से उस उंगली तक जाती है।"

"भाग्य-रेखा नहीं है तो धन कहाँ से मिलेगा ?"

"धन जरूर मिलेगा। तेरी नहीं तो तेरी घर वाली की रेखा अच्छी होगी। उसका भाग्य तुझे मिलेगा। ऐसे भी होता है।"

"ठीक है, उसी के भाग्य पर तो अब तक जी रहा हूँ। वही तो चार बच्चे छोड़ कर अपनी राह चली गई है।"

ज्योतिषी चुप हो गया। दोनों एक दूसरे की मुंह की ओर देखने लगे। फिर यजमान ने अपना हाथ खींच लिया, और ज्योतिषी को बोला :

"तू अपना हाथ दिखा।"

ज्योतिषी सकुचाया, मगर उससे छुटकारा पाने का कोई साधन न देखकर, अपनी हथेली उसके सामने खोल दी :

"यह तेरी भाग्य-रेखा है ?"

"हाँ।"

"तेरा भाग्य तो बहुत अच्छा है। कितने बंगले हैं तेरे ?"

ज्योतिषी ने अपनी हथेली बन्द कर ली और फिर पोथी-पत्रा सहेजने लगा :

"बैठ जा इधर। कब से यह धन्धा करने लगा है ?"

ज्योतिषी चुप। दम्मे के रोगी ने पूछा :

"कहाँ से आया है ?"

"पूर्वी बङ्गाल से।"

"शरणार्थी है ?"

"हाँ।"

"पहले भी यही धन्धा था ?"

ज्योतिषी फिर चुप। तनाव कुछ ढीला पड़ने लगा। यजमान धीरे से बोला :

"हमसे क्या मिलेगा ? जा किसी मोटर वाले का हाथ देख।"

ज्योतिषी ने सिर हिलाया :

"वह कहाँ दिखाते हैं। जो दो पैसे पिलते हैं, तुम्हीं जैसों से।"

सूर्य सामने पेड़ के पीछे ढल गया था। इतने में पाँच-सात चपरासी सामने से आए और पेड़ के नीचे बैठ गये :

"जा उनका हाथ देख। उनकी जेबें खाली न होंगी।"

मगर ज्योतिषी सहमा-सा बैठा रहा। यकायक बाग की आबादी बढ़ने लगी। नीले कुर्ते पाजामे पहने, लोगों की कई टोलियाँ, एक-एक करके आईं, और पास के फुटपाथ पर बैठने लगीं।

फिर एक नीली-सी लारी झरटती हुई आई, और बाग के ऐन सामने रुक गई। उसमें से पन्द्रह-बीस लट्ठ-धारी पुलिस वाले उतरे और सड़क के पार एक कतार में खड़े हो गये। बाग को हवा में तनाव आने

लगा। राहगीर पुलिस को देख कर रुकने लगे। पेड़ों के तले भी कुछ मजदूर आ जुटे।

"लोग किस लिये जमा हो रहे हैं?" ज्योतिषी ने यजमान से पूछा।"

"तुम नहीं जानते? आज मई दिवस है, मजदूरों का दिन है।"

फिर यजमान गम्भीर हो गया:

"आज के दिन मजदूरों पर गोली चली थी।"

मजदूरों का तादाद बढ़ती ही गई। और मजदूरों के साथ खौंचे वाले, मलाई, बरफ, मूंगफली, चाट, चबेना वाले भी आन पहुँचे, और घूम-घूम कर सौदा बेचने लगे।

इतने में शहर की ओर से शोर सुनाई दिया। बाग से लोग दौड़-दौड़ कर फुट-पाथ पर जा खड़े हुए। सड़क के पार सिपाही लाठियाँ संभाले तन कर खड़े हो गये।

जलूस आ रहा था। नारे गूंज रहे थे। हवा में तनाव बढ़ रहा था। फुटपाथ पर खड़े लोग भी नारे लगाने लगे।

पुलिस की एक और लारी आ लगी, और लाठी-धारी सिपाही कूद-कूद कर उतरे।

"आज लाठी चलेगी।" यजमान ने कहा। पर किसी ने कोई उत्तर न दिया।

सड़क के दोनों ओर भीड़ जम गई। सवारियों का आना-जाना रुक गया। शहर वाली सड़क पर से एक जलूस बाग की तरफ बढ़ता हुआ नजर आया। फुटपाथ वाले भी उसमें जा जा कर मिलने लगे! इतने में दो और जलूस अलग-अलग दिशा से बाग की तरफ आने लगे। भीड़ जोश में आने लगी। मजदूर, बाग के सामने आठ-आठ की लाइन बनाकर खड़े होने लगे। नारे आसमान तक गूंजने लगे, और लोगों की तादाद हजारों तक जा लगी। सारे शहर की धड़कन मानों इसी भीड़ में पुञ्जीभूत हो गई हो। कई जलूस मिलकर एक हो गए।

मजदूरों ने झण्डे उठाए और आगे बढ़ने लगे। पुलिस वालों ने लाठियाँ उठा लीं और साथ-साथ जाने लगे।

फिर वह भीमाकार जलूस धीरे-धीरे आगे बढ़ने लगा। कन्नाट-सरकस की मालदार, धुली-पुती दीवारों के सामने वह अनोखा लग रहा था, जैसे नीले आकाश में सहसा अन्धियारे बादल करवटें लेने लगें। धीरे-धीरे चलता हुआ जलूस उस ओर घूम गया जिस तरफ से पुलिस की लारियाँ आई थीं। ज्योतिषी अपनी उत्सुकता में बैंच के ऊपर आ खड़ा हुआ था। दमे का रोगी, अब भी अपनी जगह पर बैठा, एकटक जलूस को देख रहा था।

दूर होकर नारों की गूंज मन्दतर पड़ने लगी। दर्शकों की भीड़ बिखर गई। जो लोग जलूस के संग नहीं गये, वे अपने घरों की ओर रवाना हुए। बाग पर धीरे-धीरे दुपहर जैसी ही निस्तब्धता छाने लगी। इतने में एक आदमी, जो बाग के आर-पार तेजी से भागता हुआ जलूस की ओर जा रहा था, सामने से गुजरा। दुबला सा आदमी, मैली गंजी और जांघिया पहने हुए। यजमान ने उसे रोक लिया :

"क्यों दोस्त, जरा इधर तो आओ।"

"क्या है?"

"यह जलूस कहाँ जाएगा?"

"पता नहीं। सुनते हैं, अजमेरी गेट, दिल्ली दरवाजा होता हुआ लाल किले जाएगा, वहाँ जलसा होगा।"

"वहाँ तक पहुंचेगा भी? यह लठधारी जो साथ जा रहे हैं, जो रास्ते में गड़बड़ हो गई तो?"

"अरे गड़बड़ तो होती ही रहती है, तो जलूस रुकेगा थोड़े ही।" कहता हुआ वह आगे बढ़ गया।

दमे का रोगी जलूस के ओझल हो जाने तक, टिकटिकी बाँधे उसे देखता रहा। फिर ज्योतिषी के कन्धे को थपथपाता हुआ, उसकी आंखों

में आंखें डालकर मुसकराने लगा । ज्योतिषी फिर कुछ सकुचाया, घबराया । यजमान बोला :

"देखा, साले ?"

"हाँ, देखा है ।"

अब भी यजमान की आंखें जलूस की दिशा में अटकी हुई थीं। फिर मुस्कराते हुए, अपनी उंगलियाँ—कटी हथेली ज्योतिषी के सामने खोल दी :

"फिर देख हथेली, साले, तू कैसे कहता है कि भाग्य-रेखा कमजोर है ?"

और फिर बाएँ हाथ से छाती को थामे जोर-जोर से खांसने लगा ।

घर-बेघर

थानेदार करमचंद, थाने के मेज पर दोनों टांगें फैलाए, अपने मित्र के सामने अपना दु:खड़ा रो रहे थे।

"कसम है जो यहां फूटी कौडी भी कभी ऊपर से मिली हो। जबसे मैं इस इलाके में आया हूँ, बस मिट्टी छान रहा हूँ। दूसरे इलाकों के थानेदार हैं, जिस चीज पर हाथ रखते हैं, सोना हो जाती है; एक एक के घर छ: छ: कालीन हैं। यहां गुजारा चलाने के लिए भी पैसे नहीं।"

उनका मित्र, खिड़की के पास खड़ा, सिगरेट के कश लगाता हुआ, बाहर देख रहा था। खिड़की के सामने, थोड़ी दूरी पर, एक पक्की ईंटों की दीवार, थाने की सीमा आंक रही थी। उसके पार, इलाके की चौड़ी पक्की सड़क थी, और सड़क के पार, 'थानेदार का इलाका' शुरू हो जाता था। एक दूरतक फैली हुई ढलान पर अनगिनत झौंपड़े, कच्चे मकान, छोटी छोटी कोठड़ियां, खोखे, एक दूसरे में सटे हुए खड़े थे। शाम के बढ़ते अंधेरे में उड़ती धूल के साथ साथ अब धुंआ और अन्धकार भी उस बस्ती को ढकने लगे थे, और इस आच्छादन में कहीं कहीं जीर्ण हीन झौंपड़ों के सामने चूल्हे जल रहे थे, जो इस बस्ती में जीवन का आभास दे रहे थे।

"कौन लोग हैं जो यहां पर रहते हैं? शरणार्थी तो नहीं?" मित्र ने पूछा। "मैं क्या जानूं कौन हैं।" थानेदार ने बड़बड़ाते हुए जवाब दिया। "जिन्हें उनकी माँ नहीं पहचानती, उन्हें मैं क्या जानूंगा। चमार मजदूर, छाबड़ी वाले, भिखमंगे, आवारा, तरह तरह के लोग यहां रहते हैं। किसी का समन ले कर जाओ, तो दिन भर भटकते रहो, उसका ठिकाना नहीं मिलता। यहां एक को दूसरा नहीं जानता।"

इतने में बाहिर बराण्डे में बोझल बूटों की टप-टप की आवाज आई और थोड़ी देर में एक हवालदार ने अन्दर आकर, एड़ी टकराकर सलाम किया।

"क्या है ?" थानेदार ने बिना आंखें ऊपर उठाये पूछा।

"जनाब, एक केस है।"

"कैसा केस है ?"

"वही औरत है जनाब, जो सरकारी कोठड़ी में रहती है।"

"क्या फिर किसी का बच्चा उठा लाई है ? दो कोड़े लगाओ और दफा कर दो। मेरे पास वक्त नहीं है।"

हवालदार फिर भी चुपचाप खड़ा रहा। थानेदार का मित्र कुतूहल-वश खिड़की छोड़ कर मेज के पास आ गया।

"क्या है ? जाते क्यों नहीं ?'

'जनाब, उसके साथ एक आदमी भी पकड़ा हुआ है।"

"वह कौन है ?"

"कोई आवारा है जनाब, अधेड़ उमर का आदमी है।"

थानेदार गुस्से में बहुत गुर्राए, मगर लाचार हो गये। नया मुजरिम था, केस सुनना जरूरी हो गया। हवालदार को मुजरिम पेश करने का आदेश दिया, और स्वयं, मेज पर से टांगें हटा कर, पास पड़ी हुई तुर्रेदार पगड़ी को सिर पर रखा, और तोंद संभालते हुए कोट के बटन बन्द करने लगे।

"यह औरत कौन है ?" मित्र ने कौतूहल से पूछा।

" इस औरत ने नाक में दम कर रखा है। हर तीसरे रोज इसकी शिकायत आती है। न मैं इसे जेल में ठूंस सकता हूँ, न खुला छोड़ सकता हूँ। इस नामुराद को बच्चे उठाने की इल्लत है। जहां कहीं इसे कोई बच्चा अकेला घूमता हुआ मिल जाए, उसे उठा लाती है। बस, इसे यही जनून है। बच्चे को अपने पास रखती है, उसे खिलाती है,

पिलाती है, हर तरह से दुलारती है। मगर कोई बच्चा वापिस लेने के लिये जाए तो उसे काटने को दौड़ती है, उसके बाल भी नोच लेती है।"

"है कौन ?"

"मैं क्या जानूं कौन है। यहां पास ही फूस की चटाइयां बनती हैं, वहां पर काम करती है। मुझसे पहले थानेदार ने इस पर रहम करके इसे एक सरकारी कोठडी रहने को दी थी, बस यह वर्षों से उसी में टिकी हुई है। मैंने हजार कोशिश की है कि यह किसी तरह यहां से चली जाए, और हमें इन शिकायतों से चैन मिले, मगर यह भुक्खड़ लोग किसी चीज को चिपटे तो जोंक की तरह चिपट जाते हैं।"

फिर टप-टप बूटों की आवाज आई और हवालदार दाखिल हुआ। उसके पीछे एक औरत धीरे-धीरे अन्दर चली आई। तीस पैंतीस वर्ष की औरत होगी। पिचका हुआ शरीर, मैले कपड़े, नंगे पांव बाहिर के झोंपडों की तरह रागहीन, रूपहीन, मेज के सामने आकर चुप-चाप खड़ी हो गई। उसके पीछे-पीछे एक अधेड़ उमर का आदमी एक फटी हुई नीली कमीज बदन पर लटकाये, हाथ जोड़े हुए, चारों ओर देखता हुआ दाखिल हुआ, जैसे पहिली बार थाने में लाया गया हो। बाहिर की धूप और बारिश ने उसकी त्वचा को खाल बना दिया था। बाल कुछ काले, कुछ सफेद धूल और मिट्टी में एकसे हो रहे थे। उसने झुककर थानेदार साहिब को, उनके मित्र को, पास खड़े हुए हवालदार को, तीनों को नमस्कार किया, और हाथ बांधे औरत के पीछे खड़ा हो गया।

थानेदार ने औरत को देखते ही कड़ककर कहा :

"तू बाज आएगी या नहीं ? ठीक रास्ते पर आ जा, वरना हवालात में बन्द कर दूँगा।"

औरत जैसे आई थी, वैसे ही मेज के सामने खड़ी रही। थानेदार की कड़क ने उसके चेहरे पर कोई भय या आवेश पैदा न किया। केवल अधेड़ उमर का आदमी, आवाज सुनते ही सिर से पाँव तक काँप उठा।

"यह आदमी कौन है ?" थानेदार ने हवालदार को सम्बोधित करके पूछा।

"जनाब दस बारह रोज हुए इसी का लडका खो गया था, जो इस औरत की कोठड़ी में से मिला था। जनाब के हुक्म के मुताबिक मैंने बच्चा इसे वापस दिलवा दिया।"

"फिर अब क्या बात है ?"

जनाब, बच्चा अब भी इसी औरत के पास ही रहता है, इसने वापस नहीं लिया।'

"क्या मतलब ? यह बच्चे को ले नहीं गया, या उसने फिर उठा लिया है ?"

"कुछ शक्की मामला है, जनाब। दिनभर यह आदमी कोठड़ी के चक्कर काटता रहता है, और रात के वक्त भी मैंने इसे कई बार कोठड़ी के पास खड़े देखा है। न मालूम कौन आदमी है, आज शाम हमने इसे हिरासत में ले लिया है।"

थानेदार ने भवें चढ़ाकर उस आदमी की ओर देखा, और क्रुद्ध, तीखे स्वर में बोले :

"इधर आगे आओ। क्या नाम है तुम्हारा ?"

उस आदमी की टांगे फिर एक बार लड़खड़ा गई। दोनों हाथ बांधे मेज के सामने आ गया।

'परसू, माई–बाप, मेरा नाम परस राम है।'

'यह औरत तेरी क्या लगती है ?'

परसू चुप रहा। इसकी दोनो आँखें धरती पर गड़ गईं।

'बोलता क्यों नहीं, क्या लगती है ?'

परसू अब भी चुप रहा।

'क्या काम करते हो ?'

परसू ने पहली बार आंखें ऊपर को उठाई, फिर एक बार नमस्कार किया, और बोला :

'हुजूर, छाबड़ी लगाता हूँ।'

'रहते कहाँ पर हो ?'

हुजूर, मेरा कोई ठिकाना नहीं।'

'तो बदजात, यहाँ क्या करने आते हो ?' फिर हवालदार की ओर घूमकर बोले।

'इसका लड़का किधर है ?'

'जनाब, बाहर कान्स्टेबल के पास है।'

थानेदार ने एक बार परसू को सिर से पाँव तक देखा, जैसे एक ही नजर में उसका जीवन परिचय ले लेना चाहते हों। आवाज को धीमा करके बोले :

'तुझे जब लड़का दिलवा दिया गया था तो उसे ले क्यों नहीं गया? क्या इस औरत से नजर लड़ गई है ?'

परसू की नजरें फिर धरती पर गड़ गईं। न हूँ, न हाँ। थानेदार ने अपने मित्र की ओर देखा, दोनों मित्र मुस्काए।

'तेरे बाल पक गये, आँखों में हया शरम नहीं है ?' फिर हवालदार को सम्बोधित करके बोले।

'क्या कोई और आदमी भी इसकी कोठड़ी के पास आते हैं ?'

'जी नहीं, सिरफ इसी आदमी को कुछ दिन से देखा है। इसीलिये इसे पकड़ लिया है, जनाब।'

थानेदार दिन भर के थके हुए थे। बहुत मगज पच्ची न करना चाहते थे। एक वाक्य में फैसला सुना दिया :

'ले जाओ इन्हें यहाँ से। इस औरत को कुछ दिन हवालात में रखो, और कोठड़ी को ताला लगा दो। और इस बूढ़े को इसके लड़के के साथ आबादी से बाहर निकाल आओ, जो फिर यह कभी इस तरफ आए तो मुझे खबर दो। जाओ, ले जाओ इन्हें ···'

हवालदार मुजरिमों को बाहर ले जाने लगा। औरत चुपचाप दरवाजे की ओर जाने लगी, मगर परसू ज्यों का त्यों हाथ बांधे खड़ा रहा।

हवालदार जब उसे पकड़कर बाहिर की ओर धकेलने लगा तो वह काँपती आवाज में बोल उठा :

'हुजूर, आपका दरबार बना रहे, एक अरज है, हुजूर, मैं अपने आप यहाँ से चला जाऊँगा, मालिक।'

थानेदार ने परसू की ओर देखा, मगर परसू रुका नहीं, दुस्साहस करके अपनी अरज कह गया :

'आप कहेंगे तो मैं शहर भी छोड़ जाऊँगा हुजूर। मगर इसे कोठड़ी में रहने दिया जाए, इसे नहीं निकालें हुजूर।' दोनों मित्र फिर एक दूसरे को देखकर मुस्काए, हंसे।

'तुम्हें इससे क्या मतलब ? खैर मनाओ जो तुम्हें छोड़ दिया है।

'हुजूर, यह कोठड़ी इसके पास रही तो यह लौण्डा भी पल जाएगा हुजूर।'

'लौण्डा ? कौन लौण्डा ?' थानेदार ने हैरान होकर पूछा। फिर अपने मित्र को दबी आवाज में बोले।

'हं, इसमें कुछ है। यह कमीने कोई बात सीधे मुँह नहीं बताएंगे। हर बात में हेर फेर करते हैं। साफ-साफ बता क्या बात है, वरना कोड़ों से पिटवा दूँगा।'

थानेदार के मित्र की रुचि केस में बढ़ने लगी थी। उन्होंने थानेदार साहब की कांन्ही पर हाथ रखते हुए गुस्सा रोकने को कहा, और बूढ़े परसू को ढारस देते हुए बोले :

'तुम्हें थानेदार साहिब कुछ नहीं कहेंगे, बेशक आराम से बात करो। मगर सच-सच सारी बात बता दो।'

परसू के कांपते हाथ थम गये। उसने कृतज्ञता से मित्र महोदय की ओर देखा और बोला :

'माई–बाप, यही अरज है, मैं चला जाऊगा, लौण्डा इसके पास टिका रहे।'

'तुम अपना लड़का इस औरत के सुपुर्द करना चाहते हो ?'

'हुजूर, यह मेरा लड़का नहीं है। 'परसू ने धीरे से कहा।

'तेरा नहीं है ? तो तू अब तक हमें बनाता रहा है ? किसका लड़का है यह ?' थानेदार ने मेज पर झुकते हुए पूछा।

मैं नहीं जानता, माई बाप, मुझे नहीं मालूम यह किसका लड़का है।'

'तेरा नहीं तो तू इसे अपने साथ क्यों लिये फिरता है ?'

'मैं नहीं लिये फिरता हुजूर।'

कहता कहता परसू फिर चुप हो गया। थानेदार ने हवालदार को कहा :

लड़के को अन्दर ले आओ।'

बच्चे को अन्दर लाया गया। कोई पांच साल का काला दुबला शरीर, उतनी ही चकित आँखें, मुँह में उंगली दबाए कभी एक को देखता हुआ कभी दूसरे को, परसू की कमीज का छोर पकड़ कर खड़ा हो गया।

'अब बोलो क्या बात है' डरो नहीं मित्र महोदय ने धीरे से परसू को कहा।

'मैं छाबड़ी लगाता हूँ हुजूर। मण्डी में से सब्जी लेकर रोजगार करता हूँ।'

'एक रोज सबेरे मण्डी में से निकल रहा था जब मैंने मुड़कर देखा तो, हुजूर, यह लौण्डा, कुत्ते के पिल्ले की तरह मेरे पीछे चला आ रहा था। मण्डी में बहुत भीड़ थी, मैंने सोचा किसी का बच्चा भटक गया है। मगर यह मुझे देखकर भी वापिस नहीं लौटा। मैंने अपनी छाबड़ी ठिकाने पर रखी, और इसका हाथ पकड़ कर इसे मण्डी में वापस ले गया। बहुत पूछा, हुजूर, मगर किसी ने कोई पता नहीं दिया। अब मैं इसे कहाँ ले जाऊँ ! जहाँ पर मैं बैठूं साथ में यह बैठ जाए, जो छाबड़ी उठाकर जाने लगूं तो साथ-साथ चलने लगे। अब हुजूर, इनसान का

बच्चा है इसे कोई मार के कैसे भगा दे। उस रोज शाम पड़ने तक यह मेरे साथ घूमता रहा। इसे कहाँ छोड़ता! मैं इसे अपने साथ ही ले गया। तब से यह मेरे साथ है, हुजूर।'

'तुम रहते कहाँ पर हो?'

'हुजूर, मेरा कोई ठिकाना नहीं, मैं कहीं भी नहीं रहता। मेरा एक वतनी इधर खोखे में रहता है, सरदी बरसात हो तो उसके पास पड़ रहता हूँ नहीं तो इधर पुल के नीचे जहाँ और लोग सोते हैं, मैं भी रात काट लेता हूँ।'

'यह लड़का कब से तुम्हारे पास है?'

'गरमी के दिनों में यह मेरे पास आया था हुजूर, अब जाड़े के दिन हैं।'

'फिर क्या हुआ?'

'फिर एक रोज यह लड़का खो गया, हुजूर। तो मैंने सोचा जिस किसी का है उसे मिल गया होगा। दो तीन रोज तो मैंने ध्यान नहीं दिया। मगर फिर दिल नहीं माना। यूं ही कैसे भूल जाता हुजूर! भगवान ने जिसे मेरे पास भेजा, उसे बिना ढूँढ़े–पूछे कैसे छोड़ दूँगा! मैं इसे खोजने लगा। उस रात हुजूर बारिश हो रही थी, मैं सिर पर टोकरी रखे पुल की तरफ जा रहा था जब एक कोठड़ी में यह लौण्डा मुझे नजर आ गया। हुजूर. इसी की गोद में बैठा भात खा रहा था। मैंने सोचा इसकी माँ इसे मिल गई है।

'जी में आया लौट जाऊँ, फिर मैंने कहा इस लौण्डे के सिर पर हाथ तो फेर जाऊँ, माँ को बोल दूँ कि यह इतने दिन मेरे पास रहा है। मैं कोठड़ी के पास खड़ा हो गया। मगर यह औरत मुझे देखते ही मुझ पर लपक पड़ी, और मेरे बाल नोच डाले। मुझे शक हो गया कि यह लौण्डा इसका नहीं होगा। तब मैंने···'

थानेदार साहब में यह लम्बी राम कहानी सुनने के लिये धैर्य न था।

मेज पर हाथ मार कर बोले :

'बस बस सुन लिया, अब यह कथा बन्द करो।'

'हुजूर, यही अरज है, इसकी कोठड़ी इससे मत छीनो। यह लौण्डा यहीं पर पल जाएगा, इस औरत की गोद भी भरी रहेगी।'

परन्तु थानेदार के मित्र में सरल कौतूहल अधिक था, अविश्वास और घृणा कम। मुस्काते हुए बूढ़े की आँखों में आँखें मिला कर बोले :

'हा, लौण्डा मिल जाने पर तुम भी यहीं टिक गये! तुम क्यों रोज इधर चक्कर काटते थे!'

परसू ने धीरे-धीरे कहा :

'मुझ से भूल हो गई हुजूर, माफ कर दो, फिर ऐसा नहीं होगा। मैं बूढ़ा हो चला हूँ हुजूर, पुल के नीचे कभी सोने देते हैं, कभी निकाल देते हैं। मेरा कोई ठिकाना नहीं मालिक यह औरत बच्चे को इतना दुलारती थी, मैंने सोचा, इन दानों के साथ मेरे भी दिन कट जाएंगे। मगर मैं चला जाऊँगा मालिक·····,'

दोनों मित्रों ने फिर एक दूसरे की तरफ देखा और हंसे। थानेदार ने कहा—

'जिस औरत को सरकारी कोठड़ी रहने को मिल जाए, उसे दस दूल्हे बियाहने को भी मिल जाते हैं।"

फिर दोनों मित्रों में दबी आवाज में परामर्श हुआ। थानेदार अपने आदेश में कोई तबदीली न करना चाहते थे, मित्र बार-बार उन्हें समझा रहे थे। आखिर थानेदार साहब ने हवालदार को कहा :

'यह बच्चा इस औरत के हवाले कर दो। यह बेशक अभी कोठड़ी में टिकी रहे। इस बूढ़े को इलाके के बाहर छोड़ आओ। अगर यह फिर कभी इस तरफ आए तो इसे मेरे सामने पेश करो।'

हवालदार ने फिर एड़ी से एड़ी टकराई और इन फटेहाल मुजरिमों

को बाहिर ले गया। थानेदार ने फिर पगड़ी उतारी, और तोन्द पर के बटन खोलते हुए बोले :

"यही कुछ यहाँ रोज होता रहता है। पागलों के इलाके में मैं भी पागल हो जाऊँगा। सुबह से शाम तक इनकी रिपोर्टें लिखो, इन्हें बैत लगाओ, इनके किस्से सुनो। सब नसीब का खेल है किसी को क्या दोष दूं।"

थानेदार का मित्र चुप हो गया। इन लोगों के साथ कैसा बर्ताव होना चाहिए, यह वही लोग निश्चित कर सकते हैं जिन्हें इनके साथ वास्ता पड़ता हो। शायद थानेदारी चलाने के लिये, सब उसूलों में से अविश्वास का उसूल ही सब से जरूरी है। वह धीरे से कुर्सी पर से उठा और फिर खिड़की के पास जाकर खड़ा हो गया। बढ़ते अंधेरे के साथ-साथ, अन्धकार और धुंए के पुञ्ज के पुञ्ज जैसे आकाश पर से इस बस्ती पर उतर रहे थे। सरदी बढ़ रही थी, और कहीं-कहीं पर, किसी झोंपड़े के सामने जलते चूल्हे के इर्द गिर्द उस झोंपड़े की गिरस्ती, कोई काला नंगा बालक, कोई सिर खुजलाती हुई काली औरत, कोई पाँव के बल बैठा बीड़ी के कश लगाता हुआ बूढ़ा नजर आने लगा। सामने सड़क पर से हवालदार, बूढ़ा परसू, बच्चा और औरत चुपचाप जाते हुए शाम के बढ़ते अन्धेरे में खो गये।

बड़ी देर तक फिर दोनों मित्रों में गप-शप चलती रही। खिड़की के बाहिर एक कान्स्टेबल, कन्धे पर बन्दूक रखे पहरा देने लगा। जब दोनों मित्र थाने का दफ्तर छोड़ कर घर जाने लगे तो बराण्डे में फिर टप-टप बूटों की आवाज आई। हवालदार दाखिल हुआ और चुपचाप एक मोटी सिक्के की चाबी थानेदार के सामने मेज पर रख दी।

"यह क्या है?" थानेदार ने पूछा।

"जनाब, कोठड़ी को ताला लगा दिया है।"

"क्यों, क्या हुआ? वह औरत कहाँ है?"

"जनाब वह चली गई है।"

"चली गई है !"

"जनाब, मैं उन तीनों को यहाँ से ले गया। कोठड़ी में से मैंने बूढ़े की टोकरी और जूते निकाल कर बाहिर फेंक दिये। बूढ़ा उन्हें उठा कर ढलान के नीचे उतर गया। मैं उसके पीछे-पीछे गया ताकि आबादी से बाहर उसे छोड़ आऊँ। मगर जनाब, वह अभी ढलान पर से उतरा ही था कि वह बच्चा भागता हुआ उसके पास जा पहुँचा। मैंने उसे रोकने की कोशिश की मगर वह रुका नहीं। इतने में वह औरत भी बच्चे के पीछे ढलान उतर आई और उनके साथ-साथ जाने लगी। मैंने सोचा, शायद बच्चा लेने आई है, बच्चे को उठा कर लौट जाएगी। मगर वह भी नहीं लौटी, मेरे देखते ही देखते तीनों एक साथ धीरे-धीरे चलते बड़ी सड़क पर दूर तक निकल गये। जनाब का हुक्म था जो अपने आप कोठड़ी छोड़ कर जाए तो जाने दो। मैंने वापिस आकर कोठड़ी को ताला लगा दिया।"

थानेदार ने चाबी को उठाकर जेब में डाल लिया। और फिर अपनी क़िस्मत की दुहाई देने लगे।

खून के छींटे

माघ महीने के बादल आए तो चिरवांछित सुधा का रूप लेकर, पर बरसे विष बन कर। लहलहाते खेतों पर ओले बरसा गये। दस दिन तक नितान्त वर्षा का आक्रमण रहा, ओले पड़े, आँधी आई, फिर ओले पड़े। अपने भाग्य की दुहाई देते हुए किसान हाथों में दरातियाँ उठाए खेतों पर लपके, और जो कट सका काट कर ले आए, पर तब तक खेत रौंदे जा चुके थे और धरती एक विषाक्त देह की तरह काली पड़ चुकी थी। जगह-जगह पर असंख्य गेहूँ के सिट्टे, कीच में लिपटे और मिट्टी के ढेलों के नीचे दबे पड़े रह गये, जैसे रणभूमि में तरुण सैनिक मरे पड़े हों। सहसा चारों ओर गाँवों और कस्बों पर एक भयानक चुप्पी छा गई, और इस मौन, विषाद-ग्रस्त चुप्पी के नीचे किसानों का जीवन एक और करवट लेने लगा। घर उजड़ने लगे, कौड़ियों के दाम ज़मीनें बिकने लगीं, खेतों की मेंड़ों में नई रेखाएं खींची जाने लगीं। शहर को जाने वाली लम्बी सड़क पर, जहाँ कभी गेहूँ से लदी बैलगाड़ियों का तांता लग-जाता था, अब घरों से भागे हुए किसान नज़र आने लगे। कोई किसान, घर-परिवार को विधाता पर छोड़ शहर में जाकर रिक्शा हाँकने लगा, कोई दूसरा फौज में जा भरती हुआ, कोई आकाश के पराक्रम के सामने काँपता हुआ बैरागी बन गया। जगह-जगह पर, मेड़ों के पास, घरों की गुप्त चारदीवारी के पीछे, सड़कों पर, नित-नये हृदय विदारक नाटक खेले जाने लगे। हाँ, यदि कुछ नहीं बदला तो धरती की काया नहीं बदली, उस पर असंख्य मेंड़ों का जाल, अपनी कठोर रेखाओंमें धरती को छोटी-छोटी तिकोनों में बाँटता हुआ ज्यों का त्यों बिछा था, जैसे बुढ़िया धरती माँ की पसलियाँ और पिंजर निकले हुए हों।

दोपहर का वक्त था। शहर को जाने वाली लम्बी सपाट सड़क पर दो व्यक्ति चुपचाप चले जा रहे थे। सड़क के दोनों तरफ, दूर-दूर तक पानी के ताल और छप्पड़ अब भी खड़े थे। शहर अभी दूर था, और ढलती दोपहर की गोधूलि में अभी केवल शहर के मन्दिरों के कलश, और कारखानों के ऊँचे धुँएं-कश, धूमिल से नजर आ रहे थे। दोनों किसान थे, मटमैले गाढ़े के कपड़े पहने हुए, और दोनों थके हुए जान पड़ते थे। पिछला आदमी देह का चौड़ा और बलिष्ठ था, उमर में तीस-बत्तीस बरस का होगा, मोटे-मोटे हाथ, मोटी गरदन और मोटी गठीली टांगें। अगला उमर में कम, लड़का सा था, देह छरहरी और दुर्बल। उसका चेहरा ढलती धूप की तरह पीला हो रहा था, जैसे बीमार हो। लड़के के दोनों हाथ एक रस्सी से बंधे थे, जिसका दूसरा छोर पिछले आदमी के हाथ में था। किसी-किसी समय, चलते हुए, अगला आदमी रुक जाता, जिस पर पिछला आदमी लातों और घूँसों से उसे पीटने लगता, और रस्सी से खींचता हुआ उसे आगे चलाने लगता। एक किसान दूसरे किसान को हांके लिये जा रहा था।

एक पेड़ के नीचे फिर दोनों रुक गये। लड़का पाँव के बल ज़मीन पर बैठ गया। जाट ने पहले तो उसे उठाने की कोशिश की पर जब वह न उठा तो अपने कन्धे पर से लटकते हुए ख़ाकी रंग के थैले में से एक मैला गाढ़े का रुमाल निकाला, और लड़के के मुँह पर बाँधने लगा। लड़का छटपटाया, मगर दोनों हाथ बंधे होने के कारण, और ऊपर से पड़ते चाँटों के डर से, सहम कर ज़मीन पर बैठा रहा।

"उठ हरामज़ादे, रात पड़ जायगी तो शहर पहुँचेंगे? देख, शहर अभी कितना दूर है। उठ जा नहीं तो जान से मार डालूंगा।"

लड़का बँधे मुँह और बांधे हाथों को ऊपर उठाए, अपनी दो आँखों से जाट के चेहरे की ओर देखता रहा। जाट फिर रस्सी को झकझोरता हुआ उसे लातों और घूसों के बल उठाने लगा।

अनायास ही शहर की ओर से एक साइकल आती हुई नज़र आई, जिसे देख कर जाट के हाथ थम गये। साइकल पर कोई अधेड़ उमर का बाबू, काली टोपी पहने और आँखों पर चश्मा लगाए, धीरे-धीरे चला आ रहा था और दूर ही से यह कौतुक देख रहा था। इन दोनों के पास आकर रुक गया।

"क्या बात है ? इसे पीटते क्यों हो ?"

जाट पहले तो चुप रहा और बाबू को सिर से पाँव तक देखता रहा, फिर अपने फूले हुए साँस और गुस्से को दबाने की चेष्टा करते हुए बोला :

"यह पागल है बाबू, मैं तीन दिन से इसके साथ भटक रहा हूँ। मेरा पल्ला छूटने में नहीं आता।"

"तो इसे कहाँ ले जा रहे हो ?"

"इसे पागलखाने में दाखिल कराना है साहब, सुबह का गाँव से चला हुआ हूँ। अब दोपहर ढलने को आई, अभी तक शहर नहीं पहुँच पाए। रास्ते में ही चार बज जायंगे और दफ़्तर बन्द हो जायगा। तीन दिन से यही कुछ हो रहा है।

ज़मीन पर बैठा हुआ लड़का, अपनी बीमारों की सी आकृति और मुर्दा आँखों से, कभी बाबू के चेहरे की ओर, और कभी शून्य में देख रहा था।

"कौन है यह ?" बाबू ने पूछा।

जाट की आवाज़ आर्द्र हो उठी। धीरे-धीरे बोला :

"अभी हाल ही में पागल हो गया है बाबू। अभी नीम पागल है, पूरा पागल भी नहीं हुआ। इसका बाप मर गया है। जब वह मरा उस वक्त इसे तप चढ़ा हुआ था, और उसी हालत में यह मसान पर चला गया। हमने बहुत समझाया पर यह नहीं माना। जब मसान पर से लौट कर आया तो इसकी आँखें चढ़ गई। तब से ऊल जलूल बकने लगा है ?"

बाबू साइकिल थामे खड़ा था। थोड़ी देर तक चुपचाप दोनों को देखता रहा। फिर अपने शहरी अनुभव और किताबी अध्ययन के बल पर बोला :

"तो इसे पीटते क्यों हो ? जितना ज्यादा पीटोगे, उतना ही जल्दी यह पागल हो जाएगा। इसके हाथ और मुँह भी तुमने बाँध रखे हैं।"

"पीटूँ नहीं तो दो कदम भी नहीं चले। यह मेरे कहने को कहाँ समझता है।"

"इसका और कोई वली वारस नहीं है ? पागलखाने में क्यों दाख़िल कराते हो ? इसका इलाज करवाओ ठीक हो जाएगा।"

"नहीं बाबू जी, इसका कौन इलाज करेगा। इसकी बूढ़ी दादी है, मगर वह अन्धी है, उसके आसरे पर उसे कैसे छोड़ दें। वह इसे आने कब देती थी, नम्बरदार ने समझाया बुझाया, तब कहीं मानी। बाबू, उर्दू जानते हो ? खत पढ़ सकते हो ?"

"हाँ, क्या है ?"

जाट ने अपने कुर्ते के नीचे पहनी हुई गाढ़े की वास्कट का जेब टटोला, और उसमें से एक मैला अधफटा कागज निकाल कर बाबू के हाथ में दे दिया।

"इसे पढ़ो बाबूजी।"

बाबू ने कागज को हाथ में लिया, उस पर लिखे मजमून के नीचे दो अँगूठे और एक दस्तखत को देखा, और फिर धीरे-धीरे पढ़ने लगा।

"....आज रोज मोरखा—फिदवी नम्बरदार दीदार सिंह बमैह दो पञ्चों के बयान करते हैं कि बिशनसिंह वल्दे सुखासिंह मरहूम, बाप की मौत के बाद नीमपागल हो गया है। हम इल्तजा करते हैं कि इसे जालन्धर शहर के पागलखाने में दाखिल कर लिया जावे। इसका कोई वली वारस नहीं। गाँव में इसका रहना खतरनाक है...!"

बाबू ने इस मजमून को एक बार पढ़ा, और दोबारा पढ़ ही रहा

था, जब उसने घूम कर देखा कि पागल, जाट के हाथ से रस्सी छुड़ा कर खेतों में भागा जा रहा है। खेतों में कीच था, मिट्टी के मोटे-मोटे ढेले थे, मेड़ें थीं। पागल भागता जा रहा था। उसकी पतली लड़खड़ाती टाँगें जमीन पर से उठतीं, और बेतरह ढंग से कभी दाँए कभी बाँए जा कर पड़तीं। और इन दोनों के बीच रेंगते साँप की तरह बल खाती हुई रस्सी भागी जा रही थी, जिससे उसके हाथ बँधे थे।

मगर बाबू यह देखकर हैरान रह गया कि जाट ने पागल को पकड़ने की तनिक भी कोशिश नहीं की, न वह चिन्तित ही हुआ या घबराया। बल्कि पहले खड़ा था, अब सड़क के किनारे बैठ गया।

"वह तो भाग गया है, अब क्या करोगे ?"

जाट ने हँसते हुए जवाब दिया :

"जाएगा कहाँ, अभी लौट आयेगा। पहले भी तीन बार भाग चुका है, देखो बाबू, तुम कहते थे इसकी रस्सी खोल दो।"

मगर अभी पागल एक ही खेत की मेंड़ पार कर पाया था कि उसके पाँव फिसलने और लड़खड़ाने लगे, और देखते ही देखते वह धड़ाम से औंधे मुंह जमीन पर जा गिरा। फिर घबराया हुआ उठा और छट-पटाते पाँव से भागने लगा। अब की बार चार पाँच कदम ही जा पाया होगा कि उसकी टाँगें जवाब दे गईं और वह फिर मुंह के बल जा गिरा। अब उससे न उठा गया, और वह वहीं मिट्टी के ढेलों पर हाँपता हुआ बैठ गया। जाट चुपचाप बैठा हुआ उसकी तरफ देख रहा था। बाबू को पागल पर दया आने लगी। न मालूम कौन बदनसीब है, जो बेघर, यतीम, यूं सड़कों पर ठोंकरें खा रहा है। पागल जिस ओर भाग कर गया था वहाँ मीलों की दूरी तक मैदान ही मैदान थे। इतने असीम विस्तार में वह कहाँ भाग कर जा सकता था ?

"लौट आ, कुछ नहीं कहूँगा, वापिस आ जा, देर हो रही है।" जाट ने पुकारा।

पागल सिर थामें हाँपता रहा, फिर वह अपने आप वहाँ से उठ खड़ा हुआ और धीरे-धीरे जाट की ओर लौटने लगा। पागल का सिर मुंडा हुआ था, और उसका पीला जर्द माथा और सिर पसीने से तर थे। इतना भागने पर भी उसके चेहरे पर वही मृतप्राय दुर्बलता छाई हुई थी। उसकी लातें अब भी काँप रही थीं। हाँ, साँस लेने के व्याकुल प्रयास में उसने अपने मुँह पर बँधा हुआ रुमाल दोनों हाथों से नोच डाला था, जो अब उसके गले में एक फंदे की तरह लटक रहा था। गिरता पड़ता वह लौट आया और चुपचाप जाट के पास सड़क के किनारे बैठ गया।

"आप जाओ बाबू, देर हो रही है।" कहते हुए जाट उठा और फिर रस्सी का छोर पकड़ कर पागल को उठाने लगा।

बाबू ने चुपचाप साइकल को मोड़ा और सड़क पर आ गया। मन में कौतूहल होते हुए भी इन ग्रामीणों के मामले में कोई दखल न देना चाहता था। मगर वह साइकल पर सवार हुआ ही था कि सहसा पागल ने भाग कर उसकी साइकल का पिछला पहिया दोनों हाथों से पकड़ लिया। बाबू जमीन पर पाँव रख कर उतर आया। पागल पहिया पकड़े जमीन पर बैठ गया। एक बार तो बाबू की देह काँप गई, मगर पागल के दोनों हाथ बंधे थे, घबराने का कोई कारण न था।

जाट ने छूटते ही पागल के मुँह पर दो थप्पड़ रसीद किये और उसके हाथ साइकल के पहिये पर से छुड़ा लिये। थप्पड़ खाने के बाद पागल पीछे हट गया, मगर ज्यों ही बाबू साइकल पर जाने लगा तो पागल चिल्लाने लगा :

'यह मुझे पीटता है। भूसे की कोठरी में बन्द करता है। मैं नहीं जाऊंगा, मैं नहीं जाऊंगा।"

बाबू रुक गया। उसे मालूम था कि लड़का नीम पागल है, कोई वाक्य होश में और कोई बेहोशी में करता है। उसे धीरे-धीरे समझाने लगा :

"नहीं नहीं, कभी बन्द नहीं करेगा। तुम चुपचाप इसके साथ चले जाओ। यह तुम्हें कुछ नहीं कहेगा।"

पागल बच्चों की तरह जिद करने लगा, और फिर पहिया पकड़ कर बोलता गया :

"यह मुझे मारेगा, मेरा बापू मर गया है, मेरा बापू मर गया है, यह मेरी ज़मीन छीनता है।" और यही वाक्य बार-बार दोहराता हुआ, ऊंची-ऊँची आवाज़ में रोने चिल्लाने लगा।

बाबू को सन्देह हुआ। कोई इस मामले में गड़बड़ है, बात साफ नहीं। मगर इस सन्देह ने बाबू जी के कदम और भी तेज़ कर दिये। शहर के दूर वीराने में वह उजड्ड लोगों के झगड़े में न पड़ना चाहते थे। पागल की त्रस्त आँखों को देखते हुए भी वह फिर साइकल को सड़क पर ले जाने लगे। मगर अब की बार पागल उनके पीछे-पीछे चलने लगा।

जाट अब तक चुपचाप खड़ा था। अब वह आगे बढ़ आया और रस्सी खींचता हुआ पागल को रोकने लगा। जब वह न रुका तो जाट की आँखें गुस्से से लाल होने लगीं। पागल की छाती में ज़ोर से घूंसा मारते हुए बोला :—"बाबू के साथ जाएगा·····हरामज़ादे जाता क्यों नहीं!"

और फिर पागल पर लातों और घूंसोंकी बौछार पड़ने लगी। ज्यों-ज्यों पागल को पीटता, जाट का क्रोध बढ़ता जाता था। बाबू भी जाट के गुस्से को देखकर काँप उठा। जाट ने थप्पड़ जमाने के बाद अपने ख़ाकी थैले में हाथ डाला और एक मोटी साँकल जिसके एक सिरे पर सिक्के का ताला बँधा था, निकाली और ज़ोर से पागल के सिर पे दे मारी। पागल ने बहुतेरे हाथ उठाए, गिड़गिड़ाया, चिल्लाया, मगर जंजीर को रोक न सका। क्षण भर में उसके सिर में से ख़ून का फ़व्वारा फूट निकला, और देखते ही देखते पागल का मुँह खून से लतपत हो

गया। पागल काँपता हुआ, अपने लड़खड़ाते घुटने थामने की चेष्टा करते हुए ज़मीन पर बैठ गया, और कराहने लगा। झट अपने दोनों हाथ सिर पर रखे, अपनी रुआई रोकते हुए बोला :

'तू ज़मीन ले ले, मुझे नहीं चाहिये। मैं जो कहेगा करूँगा। मैं कागज़ पर अंगूठा लगा दूँगा। मेरा बापू मर गया है। तू ज़मीन ले ले.....'

बाबू की आँखों के सामने सारा षड्यन्त्र स्पष्ट होने लगा। यह जाट सचमुच इसकी ज़मीन छीनना चाहता होगा जिसके लिए यह इसे पागल-खाने में धकेल रहा है। ऐसा न हो तो पागल जमीन की बात बार-बार क्यों कहे। मगर बाबू क्या कर सकता था। अपनी निस्सहायता को भली भांति समझते हुए, जड़वत् खड़ा रहा।

जाट के कपड़ों पर खून के छींटे पड़े, उसके हाथ में से सांकल गिर गई, और वह बहते खून को देखता हुआ जड़वत् खड़ा रह गया। पागल के सिर पर से खून की धारा टप-टप धरती पर गिरने लगी। फिर, देखते ही देखते, अपना थैला और सांकल और रस्सी वहीं छोड़ कर जाट वहाँ से भागने लगा। वह भी खेतों में भागने लगा, सीधा उसी दिशा में, जिसमें थोड़ी देर पहले पागल भाग कर गया था, अपने बोझल पाँव के नीचे कीच के छींटें उड़ाता, बड़ी तेजी से वह जमीन की मेड़ें पार करने लगा। बाबू कुछ देर तो उसे खड़ा देखता रहा, फिर उसने जोर से पुकारा :

'अरे डर नहीं, मरेगा नहीं, सिर्फ माथे पर चोट आई है, लौट आ।'

मगर जाट के डरे हुए पाँव भागे जा रहे थे। बार-बार वह मुड़कर पागल की ओर देखता, फिर भागने लगता।

फिर बाबू ने देखा कि एक जमीन की मेंड़ के पास जाट के पाँव सहसा रुक गये हैं और वह खड़ा हो गया है। बाबू ने उसे फिर पुकारा, हाथों से इशारा किया, मगर जाट दूर खड़ा, हांपता हुआ,

चुपचाप उनकी तरफ देखता रहा। फिर एक अजीब बात हुई जिसकी बाबू को आशा न थी। जाट धीरे-धीरे वापिस आने लगा। बिना कुछ कहे, बिना कुछ सुने, वापिस आने लगा। उसके कपड़ों पर पागल के खून की छींटें दूर से ही नजर आ रही थीं। वह सीधा पागल के पास आया और आकर बैठ गया। उसने अपनी पगड़ी को सिर पर से उतारा, और उसके एक छोर पर से लम्बी-सी पट्टी को फाड़ा। फिर जमीन पर से थोड़ी-सी मिट्टी उठाकर पागल के जख्म पर रखी जहां से खून बह रहा था, और उस पर धीरे-धीरे पट्टी बांधने लगा। मगर आधी पट्टी भी नहीं बांध पाया होगा कि पट्टी छोड़ कर फफक-फफक कर रोने लगा। रोता जाता और धरती पर पड़ी हुई खून भरी मिट्टी को अपने माथे पर लगाता जाता।

"मैं पागल हूं बाबू, मैं पागल हूं। यह पागल नहीं है...ओ...ओ ...मैं बड़ा गुनहगार हूं बाबू। ओ...मैंने क्या किया है....वाह गुरु मेरे हाथ काट दे..."

बाबू अब भी खड़ा हतबुद्धि यह नाटक देखे जा रहा था।

"मैं अन्धा हो गया हूँ बाबू, यह मेरा अपना भाई है, मेरे सगे चाचे का बेटा है, बाबू..." और दोनों हाथ बांधकर, आकाश की ओर देखते हुए याचना करने लगा : 'गुरु महाराज, मेरे गुनाह माफ कर दो। माफ कर दो गुरु महाराज।'

फिर बाबू को सम्बोधित करके बोला :

"यह सच कहता है, सब ठीक कहता है। यह मेरे चाचे का बेटा है बाबू, इसकी एक बीघा जमीन है। नम्बरदार ने मुझे भरमाया है बाबू, मैं सच कहता हूं। मेरा खेत बारिश में सत्यानाश हो गया है, सारी जमीन में से पांच मन गेहूँ निकला, हम आठ जीव खाने वाले हैं। मैं नम्बरदार की बातों में आ गया। उसने मुझे बहका दिया कि यह जमीन मेरे नाम हो सकती है। पंचों के अंगूठे भी उसी ने लगवाये हैं। बारिश ने सत्यानाश कर दिया है बाबू, हम कहीं के नहीं रहे। इतनी-सी

जमीन में से क्या निकलेगा ? पिछली दो पीढ़ियों में छः बार जमीन बट चुकी है। वाह गुरु...मैं कहाँ जाऊं...मैं ने बीमार को सताया है, बाबू, मैंने तीन रातें इसे भूसे की कोठड़ी में..."

परन्तु वाक्य अभी पूरा नहीं कर पाया था कि वह सिसकियां लेता हुआ जमीन पर बैठ गया, और पागल के पाँव पर बार-बार अपना सिर रखने लगा।

बाबू ने गांवों की अनेक कहानियां सुनी थीं। गांवों की भूख और गरीबी के अनेक किस्से सुन चुका था, मगर आज पहली बार उस जीवन से साक्षात् कर पाया था।

थोड़ी देर के बाद जाट उठा, पागल के हाथों की रस्सी खोल दी। उसकी बगल को अपने बाजू का सहारा देते हुए, उसे उठाता हुआ सड़क पर ले आया, और धीरे-धीरे उस पर झुके हुए उसे वापिस गांव की ओर ले जाने लगा।

खून से लिथड़ी हुई सांकल, और रस्सी और नम्बरदार की चिट्ठी वहीं पड़े रह गये। बाबू बड़ी देर तक उन्हें जाते हुए देखता रहा। न मालूम किस गाँव के रहने वाले थे, कहाँ से आए थे। शाम की बढ़ती छाया में दोनों किसान धीरे-धीरे दूर निकल गए। आकाश की स्वच्छ नीलिमा में अब भी दो एक जल-हीन, श्वेत बादल उड़ रहे थे, जैसे धरती की दुर्दशा का अट्टहास कर रहे हों। नीचे धरती पर मेड़ों का जाल शाम की बढ़ती छाया में और भी गहरा होने लगा था। शहर को जाने वाली लम्बी सड़क फिर चुपचाप हो गई, केवल कहीं कहीं, मीलों की दूरी पर, कोई इक्का-दुकान किसान, शहर की ओर जाता नजर आजाए तो आजाए। मीलों की दूरी तक सपाट मैदान फैले हुए थे, और कहीं-कही जाटों के फुटकर घर, ढलती धूप में शान्त, मौन, चित्रवत् नजर आ रहे थे। इतनी दूरी पर उनमें छिपी व्याकुलता का कोई आभास न मिलता था।

घर की इज्जत

प्रभातवेला में जब बड़े भाई साहब की नींद टूटी तो नियमानुसार उन की पत्नी उन के सिरहाने खड़ी थी। एक पानी का लोटा लिये कंधे पर तौलिया रखे, पति सेवा का पुण्य यह अर्द्धांगिनी पिछले बीस साल से कमाती चली आ रही थी। भाई साहब ने मुंह हाथ धोते हुए देखा कि पत्नी का हाथ बार-बार अपने मुंह की ओर जा रहा है।

"क्यों ? दांत में फिर दर्द है क्या ?" उन्होंने आंख उठा कर पूछा।

"हां, दर्द है।"

भाई साहब ने दिल ही दिल में कहा : बीवी बूढ़ी हो चली है। और एक हलकी सी टीस उन के मन में उठी : मुझे इस से क्या सुख मिला ? अनपढ़, न सुंदर, न चतुर, जो वक्त से पहले बूढ़ी हो चली है। परंतु सुबह सवेरे वह अपने मन को अशांत न करना चाहते थे। मुंह हाथ धोकर गंभीर मुद्रा धारण किये वह थाड़ी देर तक चुपचाप बैठे रहे, फिर बोले :

"सुनो, तुम ने छोटी बहू को समझाया बुझाया है या अब भी वह मनमानी कर रही है ?"

"मैं उसे क्या समझाऊंगी। जैसे उसका घरवाला कहे, वैसे करे। मैं इस में क्या कह सकती हूं ?"

"घर की इज्जत मिट्टी में मिल जाए तो तुम खुश होगी ?"

"नाटक खेल लेगी तो कौन सा पहाड़ टूट पड़ेगा ? छोटी सी बच्ची है, दो दिन खुश हो लेने दो, फिर उमर भर इसी घर में रहना है, अपने आप संभल जाएगी।"

"अब मेरी समझ में आया कि क्यों उस लड़की का साहस बढ़ता जा रहा है। बड़ी बहू उसकी पीठ पर हो तो वह किस की सुनेगी ?"

"मैं ने उसे कुछ नहीं कहा। पर छोटी सी बच्ची को ताड़ना करने का क्या लाभ ? बचपन में दिल की उमंगें होती हैं, बाद में तो जून भुगतने वाली बात रह जाती है।" अपने दुखते दांत पर हाथ रखे बड़ी बहू यह वाक्य कह गई।

"तो तुम इस घर में जून भुगत रही हो ?"

"मेरी कौन सी साध पूरी हुई है ?" पर यह कहते ही चुप हो गई और अपने दुस्साहस पर पछताने लगी।

बड़े भाईसाहब जहां अपनी पत्नी के साथ अपने घर की गुत्थियां सुलझा रहे थे, वहां बाकी सारा परिवार गरमियों की ठंडी सुबह में मीठी नींद सोया पड़ा था। बड़े भाई के पलंग से पांच छः गज की दूरी पर चार खाटें एक साथ बिछी थीं, जिन पर उन से छोटे भाई और उन का परिवार सोया पड़ा था। ये चार खाटें छोड़कर थोड़ी दूरी पर इसी लाइन में चार और खाटें बिछी थीं, जिन पर घर के तीसरे रत्न और उन का परिवार सो रहा था। और उनसे आगे पांच खाटों पर चौथे भाई का परिवार था। इसी प्रकार चंद्राकार में बिछी लगभग पचीस खाटों के सामने, चांद-तारे की तरह बड़े भाई का बड़ा पलंग बिछा था। खाटों के पीछे एक पुराना इकहरा घर था, और घर के सामने खुली जमीन थी, जिस में एक ऊंचा शीशम का पेड़ पीढ़ियों से इस संयुक्त परिवार को अपनी छत्रछाया में लिये हुए था।

बड़े भाई अपने पांच भाइयों में धर्मराज युधिष्ठिर थे—सौम्य-मुद्रा, मीठी वाणी, मर्यादा के पक्के, अपने संयुक्त परिवार को पुरखाओं के सौंपे हुए नियमों पर चलाना अपने जीवन का ध्येय मानते थे। बरसों से गृहपति के पद पर आसीन थे। जहां शहर में और कई संयुक्त परिवार टूटफूट रहे थे, वहां इन भाइयों का परिवार प्राचीनता का दृढ़ दुर्ग बना हुआ था।

बड़े भाई आज सचमुच चिंतित थे, और इसका कारण सब से छोटे भाई की नवविवाहिता बहू थी। जब से यह भाग्यवान घर में आई थी, बड़े भाई का जैसे सिंहासन डोल गया था, और इन की प्रौढ़ प्रतिभा भी यह जानने में असमर्थ रही थी कि उसे किस ढंग से घर के अनुकूल चलाया जाए।

सुनंदा अप्सरा सी सुंदर थी, पर साथ ही बेसुध और बेपरवा भी थी। कमरों में घूमती तो गीत गुनगुनाती हुई, जब हंसती तो झरने के पानी की तरह स्वच्छंद। पहले-पहल जब आई तो घर की जीर्ण दीवारें भी जैसे मुसका उठीं पर धीरे-धीरे घर की मर्यादाओं के उल्लंघन का डर पैदा होने लगा। शादी के हफ्ते भर बाद ही सुनंदा ने जेवर गहने उतार दिए और सादे कपड़े पहन कर सहेलियों से मिलने चली गई। और इसके बाद दस दिन भी न गुजरे होंगे कि एक दिन बोली : "मैं कहीं नौकरी करूंगी, किसी स्कूल में पढ़ाऊंगी।" आज शादी के दो महीने बाद बहू एक नाटक में भाग लेने जा रही थी!

इस वार्तालाप ने बड़े भाई को और भी गंभीर बना दिया। पहले अशांत न थे, अब हो गए। बड़ी बहू साबुन और लोटा उठा कर रसोईघर की ओर जाने लगी। और बड़े भाई फिर गहरी सोच में डूब गए। थोड़ी देर बाद उन्हों ने धीरे से अपने सिरहाने के पास टिके हुए एक मोटे से लट्ठ को बड़े आदर भाव से छू लिया, यह भी उन के जीवन का एक नियम था। स्वर्गीय पिता की इस निशानी के स्पर्श से उन के मन में दृढ़ता और विश्वास का संचार हो उठता था। इस के बाद वह बिस्तर पर से उठ कर धीरे-धीरे अपने कमरे की ओर चले गए।

पूजापाठ व नाश्ते के बाद बड़े भाई साहब ने सब से छोटे भाई को अपने कमरे में बुला भेजा, और स्वभावानुसार थोड़ी देर चुप रहने के बाद बोले :

"यह नाटक कब खेला जाएगा?"

"अगले शनीचर को। अभी आठ दस दिन बाकी हैं"

बड़े भाई धीरे धीरे कहने लगे :

"भगवान् का शुक्र है जो आज बाबू जी जिंदा नहीं। उन्हें यह दिन नहीं देखना पड़ा।"

छोटा भाई सुनते ही सिहर उठा और कुर्सी छोड़ कर उन के पास आकर खड़ा हो गया।

बड़े भाई के तरकश का यह अचूक तीर था। जब देखते कि उन के प्रभाव में शिथिलता का डर है तो स्वर्गीय बाबूजी का नाम लेकर अपना प्रभाव जमा लेते।

"मैं तुम्हारी बातों में दखल नहीं देना चाहता, मगर बेहतर हो कि सुनंदा इस नाटक में से अपना नाम कटवा दे। मैं नहीं चाहता कि हर ऐरेगैरे के सामने हमारे घर की बहू स्वांग भरती फिरे।"

"पर भाईसाहब, यह तो समाजिक नाटक है, स्कूल की लड़कियां खेलने जा रही हैं।"

"मैं कब कहता हूँ कि सामाजिक नहीं है ? मगर कुलीन घरों की बहू-बेटियां लोगों के सामने बेपरदा हो कर नहीं आतीं।"

छोटा भाई चुप हो गया। उसे घबराया हुआ देखकर उसके कंधे पर हाथ रखते हुए बड़े भाई बोले :

"स्त्रियों में चंचलता अच्छी नहीं होती, इसे पनपने नहीं देना चाहिए। इस से बने-बनाए घर धूल में मिल जाते हैं। अभी-अभी तुम्हारी शादी हुई है। कई बातें यदि शुरू में ठीक न कर ली जाएं तो बाद में गृहस्थ सम्भाले नहीं सम्भलता। अगर हम भाइयों को एक मुट्ठी होकर रहना है तो हमें अपनी स्त्रियों को काबू में रखना होगा।"

छोटे भाई ने श्रद्धा और भय से सिर हिलाया। उसे अब मालूम हुआ कि वह सुनंदा को नाटक में भाग लेने की अनुमति देकर बहुत बड़ी भूल कर चुका है। नए विवाह और सुनंदा के रूप की मादकता उसकी आंखों से छुप न पाई थी। परन्तु बड़े भाई अनुभवी पुरुष थे। क्या ठीक है और क्या नहीं, इसका निश्चय वही कर सकते थे।

बड़े भाई फिर कहने लगे :

"शादी के बाद लड़की को अपने नए घर के जीवन में ढल जाना चाहिए। सुनन्दा पर से भी मायके का रंग जितनी जल्दी धुल जाए उतना अच्छा होगा।"

ऐन उसी वक्त मंझली बहू चाय के बरतन उठाए बरामदे में से गुजरी, और दोनों भाइयों ने उसे जाते हुए देखा।

"तुम इस मंझली बहू की बात भूल गए? यह जब आई थी तो अपना अलग घर बसाना चाहती थी। यदि इस की बात मान ली जाती तो यह घर कब का टूट गया होता। मगर अब कितनी सीधी हो गई है। स्त्रियों की चंचलता को तोड़ना ही पड़ता है।"

समय के धूमिल अतीत में छोटे भाई को मंझली बहू की वार्त्ता याद हो आई। तब वह स्कूल में पढ़ता था। उन दिनों घर में एक तूफान उठ खड़ा हुआ था और सब लोग मंझली बहू को कोसने लगे थे। फिर क्यों और कैसे मंझली बहू सहसा चुप हो गई, वह उस समय न जानता था। साल भर मंझली बहू रोती रही थी। वह उसे कभी घर के एक कोने में और कभी दूसरे कोने में खड़े रोते देखा करता था।

बड़े भाई गृहस्थ-जीवन पर उपदेश देते गए और छोटा भाई दत्तचित्त सिर हिलाता गया। एक-एक वाक्य उसके हृदय पर अंकित होता गया। जब वह उठा तो क्षोभ और चिंता में अपने आप को कोसता हुआ। उसने दिल में निश्चय कर लिया कि कुछ भी हो जाए, वह सुनंदा को नाटक में भाग न लेने देगा, चाहे उसे मंच पर से घसीट कर ही क्यों न लाना पड़े। वह अपने हाथों परिवार के नाम को बट्टा नहीं लगने देगा। कोई भीरु पुरुष किसी काम को करने में असमर्थ होता है तो वह धृष्टता का सहारा ले लेता है। छोटा भाई बड़े भाईसाहब की विशाल छाया के नीचे पल कर बड़ा हुआ था, उसके लिये बड़े भाई का एक-एक वाक्य ब्रह्मवाक्य के समान पूज्य था।

बात मामूली थी, अति साधारण, पर इस घर की चहारदीवारी में

छोटी-छोटी बातें भी विकराल रूप धारण कर लेती थीं। छोटी बहू जिस स्कूल में पढ़ी थी, उस स्कूल की लड़कियाँ एक नाटक खेलने जा रही थीं, और उनमें छोटी बहू भी शामिल हो गई थी। घर के सब लोग, पांचों भाई नाटक-सिनेमा देखने के शौकीन थे। बड़े भाई तो ऐसे कई अधिवेशनों पर सभापति पद पर भी बैठ चुके थे। पर वह तब था जब और घरों की लड़कियाँ पार्ट कर रही हों; जब वह स्वयं दर्शक हों, कला के प्रशंसक। जब उनकी अपनी बहू को पार्ट खेलने का शौक हो आए तो धर्म नियमावली बदल जाती थी, और कुल की मर्यादा टूटने का भय उठ खड़ा होता था।

सुनंदा संयुक्त परिवार के वातावरण को न जानती थी। छोटे-से परिवार से आई थी, जहाँ पिता और भाई बहनें एक दूसरे के साथ मित्रों के समान हंसते खेलते थे। पिता अमीर तो न थे, पर स्वछन्दता के प्रेमी थे, और बाहर की खुली हवा के सामने खिड़कियाँ दरवाजे बन्द रखने के आदी न थे। सुनंदा जब इस घर में आई थी तो वह उस पक्षी की तरह थी जो अनजाने में एक पिंजरे में चला आये और फिर अपने पर फैलाने की चेष्टा करने लगे।

जब छोटा भाई अपने कमरे में पहुंचा तो सुनन्दा रोज की तरह गुनगुना रही थी। हंसकर कहने लगी :

"तुम दोनों भाई क्या खुसफुस कर रहे थे? इस घर में खुसफुस बहुत चलती है। हर नुक्कड़ में दो-दो आदमी खड़े न मालूम क्या खुसफुस करते रहते हैं।" और फिर हंसने लगी।

छोटे भाई ने गम्भीर मुद्रा बनाते हुए कहा :

"सुनो, सुनंदा, तुम यह नाटक खेलने का विचार छोड़ दो।"

"क्यों? क्या बड़े भाईसाहब से नाटक की बात कर रहे थे?"

"नहीं, हम दोनों तो दुकान की बात कर रहे थे। मगर सारे शहर में नाटक की चर्चा होने लगी है। मुझे अच्छा नहीं लगता। तुम नाटक में से नाम कटवा दो।"

"वाह, जी, ऐसा भी कभी हुआ है ! इस वक्त उन्हें मेरे पार्ट के लिए कौन मिलेगा ? और फिर सामाजिक खेल है, इस में काम करना क्या बुरा है ? नहीं, साहब, मैं तो पार्ट करूंगी।"

पर सुनंदा के मन में शंका सी उठ खड़ी हुई, उस ने पूछा :

"क्या घर में किसी ने एतराज उठाया है ? क्या मंझली बहू ने कुछ कहा है ?"

"नहीं, किसी ने कुछ नहीं कहा।"

"तो फिर किस बात से डरते हो ? लोग तो कहते ही है। ज्यादा चर्चा होगी तो हमारे टिकट भी ज्यादा बिकेंगे।" कह कर सुनंदा हंसने लगी।

"तुम इसे मजाक समझ रही हो। पर मैं मजाक नहीं कर रहा हूं। अगर तुम ने नाटक में पार्ट किया तो इस का परिणाम बुरा होगा।"

सुनंदा को शादी के बाद पहली बार अपने पति की आवाज में कठोरता का आभास हुआ, पर वह हंसती रही।

"इस वक्त मैं छोड़ना भी चाहूं तो नहीं छोड़ सकती। मेरा पार्ट सब से लंबा है। इस वक्त उन्हें मेरी जगह कौन मिलेगा—तुम यह तो सोचते ही नहीं। जान पड़ता है तुम ने कभी नाटक नहीं खेले"।

छोटे भाई को इस जवाब में अपमान नजर आया। कड़क कर बोला :

"अगर तुम मेरा कहा न मानोगी तो इस घर में तुम्हारे लिए कोई स्थान नहीं होगा।"

सुनंदा सिर से पांव तक काँप गई, और घबरा कर बिस्तर पर जा बैठी। उसे मालूम न था कि शादी के बाद इस प्रकार के वाक्य भी सुने जाते हैं। उस का चेहरा पीला पड़ गया, और होंठ काँपने लगे। पल भर में उस की आँखें डबडबा आईं।

"तुम इसे इतना आसान समझते हो कि यदि तुम्हें किसी ने नाटक के विरुद्ध कुछ कहा तो तुम मुझे घर से निकाल दोगे ?"

छोटा भाई गुस्से में वाक्य कह गया था, मगर अब नम्रता दिखाना भूल थी। उसी दृढ़ता से बोला :

"अगर तुम मेरे प्रतिकूल चलोगी तो..."

"इस में प्रतिकूलता क्या है ? तुम्हीं ने तो कहा था कि बेशक खेलो।"

पर वार्तालाप यहाँ खत्म हो गया। सुनंदा का पति कपड़े पहन कर दुकान पर चला गया, और सुनंदा बैठी शून्य में ताकती रही। दिन भर वह उद्भ्रांत सी अपने कमरे में बैठी रही। एक बार वह सांत्वना की खोज में बड़ी बहू के पास गई। मगर बड़ी बहू रसोईघर की दीवार के साथ अपना मुंह पकड़े निढाल हो कर बैठी थी। सुनंदा उन्हीं कदमों वापस लौट आई। बार-बार वह अपनी आँखें पोंछती रही। उसे आशा न थी कि विवाहित जीवन के पहले आँसू इतने अनूठे और अपमान भरे ढंग से आएंगे।

शाम हुई। ज्यों ही बड़े भाई साहब दुकान से लौटे, सुनंदा उन के पास जा पहुँची और संकोच भरे स्वर में बोली :

"देखिए, मैं ने एक नाटक में भाग लिया है। हफ्ते दस दिन में नाटक होने जा रहा है, और आज यह कहते हैं कि नाटक में से नाम कटवा दो। नाटक में भाग लेना क्या बुरी बात है ? आप बताएं मैं क्या करूं ?"

बड़े भाई सुनंदा के चेहरे को एक ही नजर में देख कर समझ गए कि छोटे भाई ने अपना कर्त्तव्य निभाया है, और इन आँसुओं में नाटक का उत्साह बहुत कुछ धुल चुका है। स्नेह भरी आवाज में हंस कर बोले :

"सुनंदा बेटी, उस आदमी से बड़ा मूर्ख संसार भर में नहीं होगा जो पति-पत्नी के झगड़े में पड़ता है। मैं अपने लिए यह उपाधि नहीं लेना चाहता। तुम अपना निबटारा आपस में कर लो।"

यह सुनते ही सुनंदा के मन का बोझ हलका हो गया। जो बड़े भाई साहब ने अपना रुद्र पाँव इस पर नहीं रखा तो अपने पति को तो

वह समझा लेगी, उन से लड़ झगड़ कर भी उन्हें मना लेगी। उस ने कृतज्ञता से सिर झुकाया और प्रणाम कर के बाहर निकल आई। दिन भर की व्याकुलता को भुलाने के लिए पड़ोस में एक सहेली से मिलने चली गई।

पर सुनंदा अभी तक एक संयुक्त परिवार के बाहरी और भीतरी रूप से परिचित न हो पाई थी।

जब वह अंधेरा होने पर लौट कर आई तो गोल कमरे में मंझली बहू और तीसरे भाई की बहू दोनों धीरे-धीरे आपस में बातें कर रही थीं। सुनंदा को मंझली बहू से डर लगने लगा था, उसकी वाणी में विष की सी कटुता थी। छोटी को वह चाहती थी, परन्तु छोटी हर वक्त गुमसुम रहती, अपने दिल की बात किसी से न कहती थी। ज्यों ही सुनंदा ने गोल कमरे में पाँव रखा, मंझली बहू जो हाथ फैला-फैला कर बातें कर रही थी, सहसा चुप हो गई और सुनंदा को संबोधित कर के बोली :

'आओ, बहूरानी, अन्दर आ जाओ।'

पर सुनंदा बैठने की बजाए सीधी गोल कमरा पार कर के बाहर बरामदे में चली गई। बरामदे में अंधेरा था। सुनंदा चुपचाप अपने कमरे की ओर जा रही थी जब सहसा उसके पाँव रुक गए, उसके पास दरवाजे के पीछे दो आदमी बातें कर रहे थे। सुनंदा ने बड़े भाईसाहब की आवाज पहचान ली। बड़े भाई दरवाजे की ओट में सुनंदा के पति को कुछ समझा रहे थे। कुछ शब्द सुनंदा के कानों में भी पड़ गए :

"जो अब भी न माने तो कुछ दिनके लिए मायके भेज दो। इसकी चंचलता जब तक टूटेगी नहीं, तब तक वह हमारे घर में रह नहीं पाएगी। इस वक्त दृढ़ रहोगे तो उमर भर सुखी रहोगे।"

सुनंदा को जैसे काठ मार गया हो। वह दीवार के साथ सट कर खड़ी थी, वहीं खड़ी रह गई। आगे कदम बढ़ाने की उसकी हिम्मत न हुई, आवाज़ बड़े भाईसाहब की थी, इसमें कोई सन्देह न था। धीरे-धीरे वह अपने आपको संभालती हुई वापिस लौट आई और बरामदा लांघ

कर मैदान में आ गई। उसे ऐसा जान पड़ने लगा जैसे वह किसी भूल-भुलैयाँ में आ गई है, जिसमें मनुष्य जितना ही अपना रास्ता ढूंढ़ने की चेष्टा करे उतना ही भटक जाता है।

सुनंदा धीरे-धीरे काँपते हुए पाँव से पेड़ के नीचे आ खड़ी हुई—उसी तरह व्याकुल जैसे कभी बड़े भाई की बहू खड़ी हुई थी; जैसे मंझली बहू अपने नए घर की साध को टूटता देख कर खड़ी हुई थी, जैसे तीसरे भाई की बहू, अपने पति से दुत्कारी हुई, जो रोज शराब पीकर घर लौटता था और किसी पर-स्त्री से प्रेम करने लग गया था, खड़ी हुआ करती थी। यह वृक्ष उन सब घटनाओं का साक्षी था। मूक और वृद्ध उसने एक के बाद दूसरी चार युवतियों की चंचलता की आहुति इस संयुक्त परिवार के होम में पड़ते देखी थी, और आज पाँचवीं का अभिनय देख रहा था।

सुनदा को ऐसा जान पड़ने लगा जैसे सहसा उसका शरीर किसी पुरानी व्याधि से रुग्ण हो उठा है।

दो दिन बीत गए। सुनंदा ने फिर नाटक का जिक्र न किया। मन में वह बहुत छटपटाई। कभी मायके जाने की सोचती, कभी अपने पिता को खत लिखने की। जो लोग जीवन से अपनी माँग बहुत आग्रह से मांगते हैं, ठुकराए जाने पर उनकी यातना भी असह्य हो उठती है। मगर वह मुँह पर एक शब्द भी न लाई। सारे घर में नाटक की चर्चा शान्त हो गई। बड़े भाई भी आश्वस्त नजर आने लगे। उनका ख्याल था कि सुनंदा को सीधे रास्ते पर लाने के लिए बड़े दावपेच खेलने पड़ेंगे, मगर लड़की बाहर से ही शोख और निडर थी, अन्दर से कायर निकली। छोटे भाई को भी पत्नी के व्यवहार में पराजय का आभास मिलने लगा—वह नम्रता जो असहायता और उद्भ्रांति से पैदा होती है। परन्तु बड़े भाई साहब का उपदेश उसे याद था कि स्त्री झुकने से पहले सब दाव खेलती है। पुरुष एक बार भी झुक जाए तो स्त्री आयु

पर्यंत उसकी गरदन पर सवार रहती है। छोटे भाई इसलिए अभी तक तने रहे।

पर धीरे-धीरे वह नम्रता घृणा में परिवर्तित होने लगी। सुनंदा की आँखों के सामने इस घर की कुरूपता स्पष्ट होने लगी। वह दिल ही दिल में झल्लाने लगी कि यह दासता और अपमान कहाँ तक सहने पड़ेंगे। जब वह नाटक के बारे में चुप हो गई तो सभी चुप हो गए। और इसी झल्लाहट में सुनन्दा एक दिन नाटक में से अपना नाम कटवाने के लिए चली गई।

फिर एक अनोखी घटना घटी। सुनंदा गई तो भाग्य को कोसती हुई और मन में झल्लाती हुई, पर लौटी आश्वस्त, मुसकराती हुई। मगर मुँह से फिर भी कुछ न बोली।

दो दिन और बीत गए और उसके चेहरे पर से निराशा की मलिनता जैसे धुलने लगी, और वह फिर से हंसने बोलने लगी। उसके चेहरे पर पहली सी अबाध उत्सुकता तो न थी, मगर वे आँसू भी न थे। और तो और बड़े भाई भी हैरान हुए। इस घर की स्त्रियों में से किसी ने भी इतनी जल्दी और इतनी मुगमता से घर की अनुकूलता ग्रहण न की थी। हाँ, अगर इस परिवर्तन पर किसी को संदेह हुआ तो वह मंझली बहू थी। मंझली बहू का अपना हृदय यौवन की हिलोर का अनुभव कर चुका था, और फिर बहुतेरा छटपटाने के बाद इस संयुक्त परिवार की दुर्निवार चट्टान के साथ एक काँच के खिलौने की तरह चूर-चूर भी हो चुका था। वह एक युवती के हृदय के स्पंदन को समझती थी। उसने जरूर दांतों तले उंगली दबा कर कहा :

"छोटे को कहो कि सुनंदा पर आँख रखे, ये लक्षण अच्छे नहीं।"

❀ ❀ ❀

धीरे-धीरे-नाटक का दिन आ पहुँचा। दोपहर होते-होते सुनंदा उत्तेजित हो उठी। बार-बार खिड़की से झाँकने लगती और अपने कमरे में चक्कर काटने लगती उसके दिल की वही हालत हो रही थी जो उस

आदमी के दिल की होती है जो अपनी सारी कमाई जुए के एक दाँव पर लगा दे। घर का वातावरण रोज की तरह शाँत और स्तब्ध था। घर की स्त्रियाँ नाटक की तारीख तक भूल चुकी थीं। और बड़े भाईसाहब आश्वस्त, कब के दुकान पर जा चुके थे!

दोपहर ढल रही थी जब एक टांगा घर के सामने रुका और उसमें से बड़े भाई साहब उतरे, और मैदान में चलते हुए सीधे अपने कमरे में चले गए। खिड़की के अधखुले पल्लों के पीछे सुनंदा ने उन्हें देखा, और अपनी उत्तेजना को दबाने के लिए मुँह में दुपट्टे का छोर ठूँस कर एक-एक क्षण गिनने लगी कि कहीं बड़े भाईसाहब उसके कमरे की ओर न चले आएं। टांगा सड़क पर ही खड़ा रहा। सुनंदा ने अपने धड़कते दिल से घड़ी की ओर देखा। उस वक्त चार बजे थे।

पन्द्रह बीस मिनट बाद बड़े भाई फिर अपने कमरे में से निकले, काली अचकन पहने और सिर पर काली हो नोकदार टोपी रखे हुए। और धीरे-धीरे मैदान पार करते हुए टांगे पर जा बैठे, और टांगा जिस दिशा से आया था उसी दिशा में लौट गया। सुनंदा के चेहरे पर हंसी फूट पड़ी। वह जल्दी से उठी और फौरन कपड़े पहन कर घर से निकल आई। सिर मुँह को अच्छी तरह से ढाँक लिया ताकि कोई यह न कहे कि कुलीन घर की बहू सड़क पर अकेली घूम रही है।

❀ ❀ ❀

परदा उठने से पहले तीन घंटियां बजती हैं। पहली घंटी नाटक के पात्रों को तैयार हो जाने की चेतावनी देती है, दूसरी दर्शकों को अपनी-अपनी जगह पर बैठ जाने की, तीसरी घंटी पर परदा उठ जाता है।

दो घंटियाँ बज चुकी थीं। हाल में सब से पहली कतार में शहर के डिप्टी कमिश्नर के साथ बैठे हुए बड़े भाईसाहब उनकी किसी हाँ में हाँ मिला रहे थे। वही सौम्य गंभीर मुद्रा, वही शान्त आश्वस्त चेहरा, काली अचकन, काली टोपी—बड़े भाई भद्र समाज के स्तंभ नजर आ रहे थे!

बड़े भाईसाहब उठ खड़े हुए और झुक कर प्रणाम करते हुए फूलों का हार डिप्टी कमिश्नर साहब के गले में डाला। सारा हाल तालियों से गूंज उठा। फिर बड़े भाईसाहब ने अपना भाषण आरंभ किया. डिप्टी कमिश्नर का स्वागत और धन्यवाद किया, स्कूल की प्रशंसा की, शिक्षाप्रद नाटक का परिचय कराया. भारतीय संस्कृति के गुण गाए, और अन्त में नाटक में भाग लेने वालों को आशीर्वाद दिया :

'हमारे नाटक हमारे देश के इतिहास और संस्कृति का एक गौरवमय अंग हैं। मुझे खुशी है कि इस कार्य में हमारी बालिकाओं और स्त्रियों ने भाग लिया है। देश की कला देश की स्त्री जाति पर अवलंबित है। उनका भाग लेना कला के लिए मंगलकारी है।'

सुनंदा नाट्यशाला में परदे के पीछे खड़ी एक नन्हे से सुराख में से हाल में खड़े दर्शकों को देख रही थी। यह सुन कर वह हंसी, पर साथ ही साथ उसकी आँखों में घृणा और विमुखता की तीव्र भावना भी झलक उठी। इतने में उसे पीछे से किसी ने कहा :

"अब तुम स्वयं फैसला कर लो। अगर न भी खेलना चाहो तो कोई बात नहीं, हमने दूसरी लड़की को तुम्हारी जगह तैयार कर लिया है," पीछे खड़े हुए कार्यकर्त्ता ने सुनंदा से कहा।

सुनंदा ने कार्यकर्त्ता के मुंह की ओर देखा, और हंसते हुए बोली :

"तुम्हें अब भी शक है कि मैं अपना पार्ट नहीं खेलूंगी?"

"जो खेलना चाहो तो जरूर खेलो, मैं चाहता था कि तुम अच्छी तरह से सोच लो।"

"मैंने सोच लिया है। शायद पहले मैं न भी खेलती। पर अब भारतीय नारी और भारतीयसंस्कृति की प्रशंसा के बाद तो जरूर खेलूंगी।"

"मगर बात यहीं खत्म नहीं होगी, हमारा नाटक बेशक यहाँ खत्म हो जाएगा। यह सोच लो। तुम्हें उसी घर में रहना है," कार्यकर्त्ता ने विवेक भरे लहजे में कहा।

"मैं जानती हूँ। यह मत भूलो कि भाई साहिब को भी इसी घर में रहना है!" कहकर हंसती हुई स्टेज की ओर भागने लगी। फिर कोने में रुकी और घूम कर बोली :

"यह सब तुम्हारे खत की करामात है।" और हंसती हुई आंखो से ओझल हो गई।

ऐन उसी वक्त तीसरी घंटी के बजने का आवाज सुनाई दी।